सिद्ध योग

संस्थापक सम्पादक तथा संरक्षक

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्र मोहन जी महाराज

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन: सवाई, आगरा:

वर्ष ८ | जुलाई १९७५ | अंक ४

प्रकाशक

इस अंक में:—

लेख	लेखक	पृष्ठ
१. नि:सीमत्वमंप्रथम्	....	१
२. योगियों के विविध संयम एवं उनके विविध फल (हमारा विशेष लेख)	योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	२
३. योग में श्रद्धा, यम नियम	पूज्य श्री नारायण स्वामी	६
४. योगेश्वर चरित्र माला		९
५. प्रारब्ध	श्री हुकमसिंह कुशवाह बी.ए.	१३
६. योग जीवन-लक्ष्य मेरा	श्री राघवेन्द्र तिवारी	२०
७. श्रद्धा	कुमारी भारती	२१
८. साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर	श्री सद्गुरु देव जी द्वारा	२२
९. पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्	स्वामी विष्णुतीर्थ जी	२८
१०. योग का चतुर्थ अंग प्राणायाम	श्री हीरालाल शास्त्री	३०
११. स्वामी प्रणवानन्द जी से भेंट	प्रेषक श्री विजयसिंह	३३
१२. सिद्धयोगी महात्मा कबीर	श्री शिवरामसिंह सांगर	३६
१३. प्राणायाम का महत्व	टाइटिल	३
१४. संकल्पमयोऽयंपुरुष:	टाइटिल	४

संयुक्त सम्पादक
दिव्य

फोन ६२१६८

वर्ष ८ | अङ्क ४ | जुलाई १९७५

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुविधवरान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये 'सिद्धयोग:' ॥

निःसीमशर्मप्रदम्।

नायं ते समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदि
स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेषु येषां वचः।
चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितु
र्निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपरुषं निःसीमशर्मप्रदम् ॥

रे मन ! जिनके द्वार पर द्वारपाल भिक्षुकों से यह कहते हैं कि यह समय तुमसे मिलने का नहीं है, महाप्रभु इस समय एकान्तमें सो रहे हैं, यदि उठने के बाद बाहर आकर तुमको यहां बैठे देखेंगे तो वे क्रुद्ध हो जायेंगे। ऐसे मदोन्मत्त महाप्रभुओं के पीछे अपने जीवन को नष्ट न कर देवाधिदेव विश्वेश्वरकी शरण जाओ जहां न कोई रोकनेवाला है, न कोई कठोर वचन कहने वाला है, बल्कि असीम सुख देने वाला है।

हमारा विशेष लेख—

योगियों के विविध संयम एवं उनके विविध फल

[योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज]

हमने अपने इस से पहले अंक में एक लेख प्रकाशित कराया था जिसका शीर्षक था 'योगियों को भुवन ज्ञान।' इसका विषय था सूर्य में संयम करने से सारे भुवनों का ज्ञान अनायास ही होने लगता है। पाठक भली प्रकार से यह समझ गये होंगे कि योगियों के संयम का लक्ष्य क्या है और उनको संयम किस प्रकार से करना चाहिये। संयम का लक्ष्य किसी दृश्य को एक टकटकी लगाकर देखना ही नहीं प्रत्युत उसको देखते देखते अंतर्मुख होकर के उसमें समाधिस्थ होना ही है। गुरु नानक देव ने अपनी 'गुरु बाणी' में अपने मुखारविन्द से कहा है—जो ब्रह्मण्डे सोई पिण्डे, जो खोजे सो पावे' अर्थात् जो शक्ति ब्रह्माण्ड में है वही पिण्ड में मौजूद है। किन्तु जो लोग छान-बीन करते हैं उनको ही यह मिला करती है। पिछले लेख में हमने बतलाया था कि सूर्य-संयम का अर्थ सुषुम्नागत सूर्य से है और उसका स्थान योगीजन नाभिमण्डल मानते हैं। वहाँ पर संयम करने पर ही योगी के चक्षु दिव्य प्रकाश मय बन कर सारे भुवन को देखने वाले हो जाते हैं। अब इसी प्रकार से आगे भी भगवान पतञ्जलिदेव विविध प्रकार के संयमों के भेद बतलाते हैं। उन-उन विषयों में संयम करने से योगी को विविध प्रकार के ज्ञान की अनुभूति होती रहती है। भगवान पतञ्जलिदेव तारा-व्यूह के ज्ञान का प्रकार बतलाते हैं—

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥

अर्थात् चन्द्र बिम्ब में संयम करने से योगी को ताराव्यूह का अपने आप ही ज्ञान हो जाता है। समाधि का प्रकार वही है जैसा कि हम पहले समझा चुके हैं। इस सूत्र पर व्यास भाष्य

चन्द्रे संयमं कृत्वा ताराव्यूहं विजानीयात्।

अर्थात् चन्द्रमा में संयम करके ताराव्यूह की रचना को योगिराज प्रत्यक्ष करें। इस संयम के संकल्प में योगी जब अपना यह संकल्प

रखेगा कि मैं चन्द्र बिम्ब से सम्बन्धित तारा-व्यूह को जानूं तो वह अवश्य ही जान जावेगा।

तारागण की गति का ज्ञान

ध्रुवे तद्गति ज्ञानम्।

व्यास भाष्य—

ततो ध्रुवे संयमं कृत्वा, ताराणां गतिं जानीयाद् ऊर्ध्वं विमानेषु कृत संयमस्तानि विजानीयाद्॥

अर्थात् ध्रुव तारे में संयम करने से योगी सभी तारागण की गति को जान लेता है क्योंकि ध्रुव अटल है सुस्थिर है। गति रहित स्थिर वस्तु पर संयम करने से उसके आस पास के गतिमान तारागणों का ज्ञान तो हो ही सकता है। इसी प्रकार से जैसे ध्रुव में संयम करने से तारागण की गति का ज्ञान होता है, उसी प्रकार से तारागण के ऊर्ध्व विमान आदि में संयम करने से उसका ज्ञान भी योगी को स्वाभाविक ही है।

काया व्यूह का ज्ञान

शरीर भी एक अण्ड का रूप है। अनुभवी लोगों ने शरीर के अन्दर नदी, नाले, पहाड़, समुद्र आदि सभी को जाना है अतः मनुष्य के शरीर को भी एक व्यूह रचना का ही रूपक माना गया है। इस काया रूपी व्यूह का ज्ञान प्राप्त करने के लिए योगी को कहीं न कहीं संयम करने की आवश्यकता है ही। नाभि-मण्डल एक ऐसा स्थान है जहाँ शरीर भर की नाड़ी समूह का एक अधिष्ठान है अतः भगवान पतञ्जलिदेव ने निम्नांकित सूत्र में नाभिचक्र में संयम करने से कायव्यूह के ज्ञान की सूचना इस प्रकार दी।

नाभिचक्रे कायव्यूह ज्ञानम्॥

व्यास भाष्य—

नाभिचक्रे संयमं कृत्वा कायव्यूहं विजानीयाद् वात पित्तश्लेष्माण स्त्रयो दोषाः सन्ति धातवः सप्त त्वग्लोहितमांस स्नाय्वस्थिमज्जा शुक्राणि पूर्वं पूर्वमेषां बाह्यमित्येष विन्यासः।

अर्थात् नाभिचक्र में संयम करने पर योगी को काया व्यूह का ज्ञान होता है। कायाव्यूह में वात पित्त कफ आदि तीन प्रकार के दोष हैं और सात धातुयें हैं इसमें त्वचा अर्थात् चमड़ी रक्त अर्थात् रुधिर, मांस स्नायु अर्थात् नाड़ियें, हड्डी, मज्जा और शुक्र ये सब पहले बताये प्रकरण की अपेक्षा बाह्य रूप से माने गये हैं। जिस प्रकार से सूर्य द्वार में संयम करने से योगी को सारे भुवन का ज्ञान हो जाता है इसी प्रकार से नाभि मण्डल में संयम करने से शरीर की सारी रचना का ज्ञान योगी को हो जाया करता है क्योंकि शरीर के आधारभूत वात पित्त कफ आदि दोष और सप्त धातुयें हैं। इनको पूर्णरूपेण जान लेने पर इनसे सम्बन्धित अन्य शरीर रचना को भी भली प्रकार से जाना जा सकता है। अब इससे आगे भगवान

पतञ्जलिदेव एक और विषय का वर्णन करते हैं और वह विषय है।

क्षुत्पिपासा निवृत्ति का उपाय

योगाभ्यासी योगी के रास्ते में जिस प्रकार अन्य व्याधिस्त्यान संशय प्रमादादि अन्तराय हैं उसी प्रकार से भूख और प्यास भी साधक के रास्ते में एक बहुत बड़ा अन्तराय है। साधक ज्यों-ज्यों अभ्यास में बैठेगा त्यों-त्यों उसको भूख और प्यास सताती रहेंगी। फलस्वरूप वह अपने अभ्यास को छोड़ बैठेगा और यह लोकोक्ति चरितार्थ हो जायेगी कि—

भूखे भगति न होय गोपाला,
यह लो अपनी कंठी माला।

इसी बात को मद्दे नजर रखते हुए भगवान पतञ्जलि जी ने क्षुत्पिपासा निवृत्ति का भी एक उपाय बतला दिया—

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासा निवृत्तिः।

व्यास भाष्य—

जिह्वाया अधस्तात् तन्तुः ततोऽधस्तात् कण्ठः, ततोऽधस्तात् कूपः तत्र संयमात् क्षुत्पिपासे न बाधेते।

अर्थात्—कण्ठ कूप में संयम करने से योगी की भूख व प्यास मिट जाती है। जिह्वा के नीचे के भाग में तन्तु है तन्तु से नीचे कण्ठ है और कण्ठ के नीचे कण्ठकूप है। जब योगी कण्ठकूप में अपने मन को लगा करके संयमित चित्त होकर समाधिस्थ बैठता है तब उसका क्षुत्पिपासा जनित दुःख स्वतः ही शान्त हो जाता है और मन शान्त होकर सुस्थिरता की ओर जाने लगता है किन्तु स्थिरता का लाभ प्राप्त करने के लिये उसको एक विशेष प्रकार के संयम की आवश्यकता अनुभव में आने लगी उसी को बतलाने के लिए भगवान पतञ्जलिदेव ने कूर्म नाड़ी का संकेत किया—

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम्।

व्यास भाष्य -

कूपादध उरसि कूर्माकारा नाड़ी, तस्यां कृत संयमः स्थिर पदं लभते यथा सर्पगोधावेति।

अर्थात् कण्ठ कूप के नीचे वक्षस्थल की तरफ कूर्म नाड़ी है। जब योगी उसमें संयम करता है तो उसके चित्त में स्वाभाविक स्थिरता आने लगती है। लोक में इस प्रकार के उदाहरण प्रसारित हैं। सर्प और गोधा दोनों इस प्रकार के जीव हैं कि यह दोनों ही पत्थर के मानिन्द जड़वत् होकर पड़े रहा करते हैं। इसी प्रकार योगी भी यदि कूर्म नाड़ी में संयम करता है तो सर्प व गोधा की तरह ही स्थिरता को प्राप्त कर लेता है।

सिद्ध-दर्शन का उपाय

मूर्द्धा ज्योति में संयम करने से योगी को सिद्धों के दर्शन होने लगते हैं। सिर में कपाल भाग के नीचे एक छिद्र है उस छिद्र में बहुत ही देदीप्यमान भास्वरा ज्योति की स्थिति है। योगी अपने संयम के आधार पर यदि

वहां मन को स्थिर करता है तो उसको पृथ्वी और आकाश के अन्तराल में विचरने वाले सिद्धों के दर्शन अपने आप ही होने लगते हैं। इस प्रकार के जो सिद्ध लोग हैं वे देव रूप माने जाते हैं।

सर्व ज्ञान का उपाय

संयम के आधार पर योगी सभी कुछ जान लेता है किन्तु फिर भी आत्म ज्ञान की ओर बढ़ते हुए योगी को प्रातिभ नाम के एक ज्ञान का उदय होता है। उस ज्ञान के उदय हो जाने पर योगी सब कुछ जान लेने की ताकत वाला हो जाता है। भगवान पतञ्जलिदेव के शब्दों में पढ़िये -

प्रातिभाद्वा सर्वम्।

व्यास भाष्य—

प्रातिभ नाम तारकं तद्विवेकजस्य ज्ञानस्य पूर्वं रूपं यथोदये प्रभा भास्करस्य तेन सर्व मेव जानाति योगी प्रातिभस्य ज्ञानस्योत्पत्ताविति ।

अर्थात् प्रातिभ नाम का एक ज्ञान है जिसके विवेक ज्ञान का पूर्व रूप कहना चाहिये। जैसे सूर्योदय से पहले सूर्य का धीमा-धीमा प्रकाश उषा काल में हो जाया करता है जिसको हम लोग पौ फटना भी कहा करते हैं। इस पौ फटने पर जिस प्रकार सांसारिक मनुष्य उस धुंधले प्रकाश में सभी कुछ देखने लग जाते हैं, उनको मकान वृक्ष नदी नाले सब नजर में आने लग जाते हैं इसी प्रकार विवेक ज्ञान से पूर्व इस प्रातिभ नाम के ज्ञान के उदय होने पर उस आत्म तेज के प्रभाव से सभी कुछ जानने लग जाता है। दूसरों के मन में यदि कोई भाव गुजरता है तो योगी तत्काल जान लेता है कि अमुक व्यक्ति अब यह सोच रहा है। अमुक स्थान पर इस समय अमुक कार्य हो रहा है।

योगी को चित्त का ज्ञान

हृदये चित्त संवित् ।

व्यास भाष्य—

यदिदमस्मिन ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म तत्रौ विज्ञानं तस्मिन् संयमा-च्चित्त संवित ।

अर्थात् हृदय में एक कमल है वह परम् विज्ञान का घर है उसमें संयम करने से योगी को चित्त का ज्ञान हुआ करता है संयम सिद्ध योगी अपने संयमित चित्त को मैं अमुक ज्ञान को प्राप्त करके ही रहूँगा इस भावना को दृढ़ करके जो भी कुछ जानना चाहता है वह तत्काल जान जाता है। चित्त की कोई आकृति नहीं किन्तु जब योगी जानना चाहता है कि मैं चित्त को जानूं और इसी भावना को लेकर वह समाधिस्थ हो जाता है तो उस सर्व व्यापक अन्तर्यामी परम् गुरु परमात्मा की कृपा से उसको शुभ प्रेरणा मिल जाती है एवं वह उस वस्तु तत्व को जान लेता है। योग में संयम योगियों की एक अनुपम निधि है। संयम प्राप्त करना ही कुछ कठिन है। एक योगी अपने अभ्यास के बल से जहां-जहां अपने संयमित चित्त को लगायेगा उसके ज्ञान विशेष को अवश्य ही प्राप्त कर लेगा। अतः प्रत्येक पाठक

को चाहिए योग की इस अमर विधि को प्राप्त प्रयत्न में लग जाये। यह न समझे कि मैं इस गूढ़ विषय को कैसे जान सकूंगा कैसे पा सकूंगा।

करत करत अभ्यास के,
जड़मति होत सुजान।

एक एक बूंद पानी के पड़ने से घड़ा पूरा भर आया करता है। अतः जो उद्यमी लोग पूर्ण पुरुषार्थ के साथ इस अन्तरनिधि को प्राप्त करने के प्रयत्न में लग जायेंगे वे लेंगे एवं अपने मनुष्य जीवन को सफल बनालेंगे।

—ॐ—

योग में श्रद्धा, यम-नियम

[पूज्य श्री नारायण स्वामी]

—ॐ—

सबसे पहली बात, जो जिज्ञासु में होनी चाहिए और जिसके बिना कोई भी योग की दुनिया में, दाखिल नहीं हो सकता, श्रद्धा है। किसी पुरुष को भी, जिसका हृदय श्रद्धा से शून्य है, योग नहीं आ सकता।

श्रद्धा

श्रद्धा किसे कहते है। श्रद्धा (श्रत्+धा) सच्चाई के धारण करने का नाम है। सच्चाई का ज्ञान तर्क से हुआ करता है और ज्ञान होने पर उसे हृदय में धारण कर लेना, श्रद्धा कहलाता है। हृदय में धारण कर लेने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य उसके विपरीत आचरण न कर सके। श्रद्धा रखते हुए सबसे पहले यमों को हृदय में धारण करने का भी अभ्यास करना चाहिये। अभ्यास किस प्रकार हो? यमों में से एक अहिंसा को लेकर वह प्रकार बतलाया जाता है—

(१) सबसे पहले अहिंसा के ग्रहण और धारण करने की प्रबल इच्छा मनुष्य के हृदय में होनी चाहिये।

(२) उसे ऐसे ग्रन्थों का अध्ययन करते रहना चाहिये जिसमें अहिंसा की श्रेष्ठता बतलाते हुए, हिंसा के दोष दिखलाये गये हों।

(३) अभ्यासी जहां रहता हो वहां मोटे अक्षरों में "अहिंसा परमो धर्मः" इस या ऐसे ही वाक्यों को, आमने सामने, इधर उधर चारों ओर मोटे कागज पर लिखकर टांग ले, जिससे बिना इच्छा के अनायास, अभ्यासी की दृष्टि, उस पर पड़ती रहे।

(४) प्रातःकाल उठते ही, बिस्तर छोड़ने से पहले, उसे अहिंसा पालन रूप व्रत को धारण करते हुए ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि उसका प्रयत्न सफल हो। उसे उच्च स्वर से तीन बार यह उच्चारण करना चाहिए कि

कि "मैंने अहिंसा पालने का व्रत लिया है, मैं कदापि कोई कार्य उस व्रत के विपरीत न करूँगा"। और समयों में भी इस व्रत का स्मरण करते रहना चाहिए।

(५) रात्रि में सोते समय फिर उपर्युक्त वाक्य को उसके एक-एक शब्द को, भली प्रकार ध्यान में रखते हुए, उच्च स्वर से, उच्चारण करके, ईश्वर से, उसकी पूर्ति की प्रार्थना करते हुए, सो जाना चाहिये, इस प्रकार कि सोते समय के अन्तिम विचार, यही हों।

कम से कम एक मास तक, इस क्रिया को, इसी प्रकार काम में लाना चाहिये। इसके बाद अहिंसा के साथ सत्य को शामिल करके पूरे दूसरे मास में अहिंसा और सत्य दोनों के, सम्मिलित व्रत के ग्रहण करने की चेष्टा करनी चाहिए। जो अहिंसा परक वाक्य कमरे में चारों ओर लगाये गये थे अब उसके स्थान में यम परक पूरे सूत्र को जिसमें पाँचों यमों का वर्णन है लगा लेना चाहिये। इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये कि कोई काम व्रत के विपरीत न हो। यदि कभी भूल से कोई विपरीत कार्य हो जाय तो उसका उसी दिन प्रायश्चित्त कर लेना चाहिए। दो मास बीतने पर अब पाँचों यमों को अपने व्रत में सम्मिलित करके उन सब का उपर्युक्त भाँति अभ्यास करे। यह अभ्यास (सम्पूर्ण) तीसरे मास तक जारी रखना चाहिए। यह यमों का प्रारम्भिक अभ्यास है।

नियमों का अभ्यास

यम के अभ्यास में ३ मास व्यतीत करके ३ मास नियमों के अभ्यास में, इस प्रकार व्यतीत करने चाहियें कि यम वाले सूत्र के साथ नियम वाले सूत्र को शामिल करके अब चौथे मास से, व्रत में, दोनों सूत्रों को सम्मिलित करके, समस्त उपर्युक्त क्रियायें दोनों सूत्रों के सम्बन्ध में करनी चाहिये। इस प्रकार छः मास तक, तो पूर्ण तत्परता से, ये अभ्यास करने चाहिए। उसके बाद इस बात को सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि यम और नियम के विपरीत आचरण करने से अभ्यासी कभी योगी नहीं बन सकता। इसलिये उन्हें (यम नियमों को) सदैव ध्यान में रखते हुए दूसरी क्रियायें करनी चाहिए।

आसन का अभ्यास

यम और नियमों के अभ्यास के साथ-साथ ही आसन और प्राणायाम दोनों का अभ्यास किया जा सकता है। आसन का अभ्यास पद्मासन से शुरू करो। पद्मासन से बैठकर बिना हिले-डुले, बिना शरीर की स्थिति बदले, जितनी देर बैठ सकते हो बैठो। जब न बैठ सको तब आसन भङ्ग करके किसी प्रकार से बैठ कर दो चार मिनट आराम लेकर फिर उसी आसन का अभ्यास शुरू कर दो। कम से कम दो घण्टे तक यह अभ्यास करके देखो कि कितनी बार तुम्हें आसन भङ्ग

करने के लिये विवश होना पड़ा। दूसरे दिन इच्छा रक्खो कि उससे कम मात्रा में आसन भङ्ग हो। इसी प्रकार उत्तरोत्तर आसन के भङ्ग होने की मात्रा, कम करते-करते यहाँ तक पहुँच जाओ कि दो घण्टे में, एक बार भी आसन भङ्ग न करना पड़े। जब दो घण्टे एक आसन से बैठने का अभ्यास पूरा हो जावे, तब इस अभ्यास को बढ़ाकर कम से कम इतना कर लेना चाहिये कि जिससे ३ घंटा ३६ मिनट तक एक आसन से बैठा जा सके। इतना अभ्यास कर लेने से आसन सिद्ध हुआ समझा जा सकता है।

प्राणायाम का अभ्यास

आसन के अभ्यास के साथ ही प्राणायाम का अभ्यास भी शुरू किया जा सकता है। अच्छा तो यह होता है कि एक घण्टा तक आसन से बैठने का अभ्यास कर लेने के बाद प्राणायाम शुरू किया जावे। प्राणायाम का अभ्यास इस प्रकार करना चाहिए कि पहले केवल रेचक का अभ्यास किया जावे अर्थात् नियमित आसन से बैठ कर मुंह बन्द रखते हुए नाक से श्वास निकाल दो, कुछ क्षणों के बाद फिर निकाल दो। इस प्रकार बीच-बीच में बहुत थोड़ा-थोड़ा अवकाश दे देकर श्वास निकालते रहो, जब इसमें असाधारणता न मालूम पड़े तब इसे छोड़ कर पूरक (श्वास भीतर ले जाने) का अभ्यास करो और यह भी रेचक की तरह थोड़ा-थोड़ा अवकाश देकर बराबर करते जाओ। जब इसमें भी असाधारणता न मालूम पड़े तो इसे छोड़कर अब पूरा प्राणायाम करना शुरू करदो। इस प्रकार कि पहले रेचक करो और रेचक करके बाह्य कुम्भक करते हुए बिना श्वास लिये रहो। जब चित्त घबड़ाने लगे तब पूरक करके आभ्यन्तर कुम्भक रखते हुए श्वास को भीतर ही रोके रक्खो जब भीतर अधिक श्वास न रोका जा सके तब फिर रेचक करते हुए दूसरा प्राणायाम शुरू कर दो। इस प्रकार प्रारम्भ में यह अभ्यास १५ मिनट से शुरू करके क्रमशः बढ़ाते हुए एक घण्टे तक पहुँचाओ और यत्न करो कि आभ्यन्तर कुम्भक तीन मिनट तक हो जावे। इतना हो जाने पर समझना चाहिये कि अभ्यासी का प्राणायाम की दुनियां में प्रवेश हुआ और अब वह अनेक प्रकार के, प्राणायाम कर सकता है। प्राणायाम की जरूरत समाधि पर्यन्त रहती है। सभी विशेषज्ञों की यह मान्यता रही है। प्राणायाम में उचित उन्नति कर लेने से ही अभ्यासी प्रत्याहार आदि योग के अन्तिम अङ्गों की सिद्धि कर सकता है। प्राणायाम की प्रत्येक क्रिया के साथ, ओ३म् का मानसिक जप करते रहना चाहिये।

योगेश्वर चरित्र माला

शतपथ के ब्रह्मचारी को खेचरत्व प्रदान

उत्तराखण्ड में श्री बद्रिकाश्रम से आगे शतपथ के रास्ते में एक ब्रह्मचारी निवास करते थे। सिर पर जटायें थी, वाघाम्बर पहने, विभूति लगाये, देदीप्यमान स्वरूप में हिंस्र जन्तुओं से आवृत उस भयावह वन प्रदेश में निवास करते थे। ब्रह्मचारी बहुत ही संयमी एवं परम विरक्त थे। उनकी परमाभिलाषा थी कि वे भूतेन्द्रियवशी महासिद्धों के दर्शन प्राप्त करें, एवं उनकी अनुकम्पा को प्राप्त कर खेचरत्व लाभ करें। ब्रह्मचारी बहुत ही स्वाध्यायशील परम तपस्वी एवं संयमी थे। वे परम विरक्त थे, उनका लक्ष्य था-विशुद्धतम् स्वरूप-स्थिति को प्राप्त करना। उसी के लिए वे हर समय प्रयत्नशील रहा करते थे। योग दर्शन का सिद्धान्त है

स्वाध्यायात् इष्टदेवता सम्प्रयोग :।

देवा, ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्याय-शीलस्य दर्शन गच्छन्ति, कार्य्ये चास्य वर्तन्त इति।

अर्थात् स्वाध्याय के बल से इष्टदेव, ऋषि मुनि एवं सिद्धलोगों के साधक को स्वतः ही दर्शन प्राप्त होते हैं। शतपथवासी ब्रह्मचारीजी तीव्रतम् तपश्चर्या करते हुए इसी आशा में थे कि कब वे सिद्धानुग्रह भाजन बनें एवं अपने परमलक्ष्य को प्राप्त करके कृतकृत्य हों। खेचरत्व प्राप्त करने की ब्रह्मचारी जी के मन में परमाभिलाषा थी। इसी लिए उन्होंने बड़े-बड़े कष्ट सहकर बड़ी-बड़ी तीव्र तपश्चर्यायें कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रत किये। उन्हीं दिनों नेपाल हिमालय से लौटने के बाद श्री आनन्दकन्द परम योगयोगेश्वर प्रभुजी रामलालजी महाराज साधारण गृहस्थ वेशधारी होकर अमृतसर में निवास कर रहे थे। श्री प्रभुजी ने अपने इस योगनिष्ठ बच्चे को लक्ष्य प्राप्ति के लिये अधीर देखा तो उसको ध्यानाभ्यास काल में जबकि वह प्रणवसत्ता में लीन सा हो रहा था आकाशवाणी द्वारा आज्ञा दी-बेटा तुम मेरे पास चले आओ। उसने देखा अखण्ड-मण्डलाकार व्याप्त तेजसत्ता में एक महापुरुष

खड़े हुए मुस्करा रहे थे, उनके रोमकूपों से तेज की धारायें निकल रही हैं। वे स्वयं प्रकाशस्वरूप व तेजोमय हैं। बड़ा भारी एक नगर दिखाई देता है जिसमें एक पवित्र मकान में वे विराजमान हैं। वे ही बड़े प्रफुल्लित आह्लाद के साथ आज्ञा दे रहे हैं—'बेटा तुम हमारे पास चले आओ, तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।' ब्रह्मचारी को बड़ा भारी आश्चर्य था कि ये कौन महापुरुष हैं, कहां पर हैं, यह नगर कौन सा है, मैं कहां पर चला जाऊँ। यही प्रश्न उनके मन में बार-बार उठते थे किन्तु वह तेज एवं दृश्य ब्रह्मचारी के आंखों के सामने अनवरत बना रहा। ब्रह्मचारी उस आश्चर्यप्रद दृश्य को देखकर आश्चर्य चकित थे ही, आज तक उनके सामने ऐसा कोई दृश्य नहीं आया था। तेज पूर्ण उस विशाल नगर को ही अपना लक्ष्य बना कर वे चल दिये। 'यद्भाव्यं तद्भविष्यति' के सिद्धान्त को सामने रख कर वे अटपटे जंगलों से निकल कर उस विशाल नगर की ओर चल पड़े। यह कौन नगर है, मैं कहां जा रहा हूँ, रास्ता ठीक है, गलत है, यह कुछ भी विचार उन्हें नहीं था। उनके मन में दृढ़ धारणा थी देहं वा पातयेयं कार्यं वा साधयेयं। मैं अपने कार्य को सिद्ध कर लूँगा या देह को मिट्टी में मिला दूँगा। दृढ़ता के साथ यह विचार मन में रखते हुए ब्रह्मचारी उन्मत्तों के मानिन्द भागे जा रहे थे। उन्हें कण्टकाकीर्ण झाड़खण्डों की परवाह नहीं थी। मीलों नीचे गड्ढे और मीलों ऊँचे पर्वतों की चोटियें उन के लिए सब समान सी हो थी।

उस देखे हुए दिव्य महान प्रकाश को लक्ष्य बना कर वह चल रहे थे। शनैः शनैः पहाड़ों के कंकरीले कंटकाकीर्ण ऊँचे और नीचे मार्गों को छोड़ कर वे अवनिमण्डल पर आये और श्री प्रभुजी के महान् तेज से देदीप्यमान पवित्र नगर अमृतसर की ओर चलने लगे। दस-पांच दिन का समय लगा कर शनैः शनैः वह अमृतसर भी पहुँच गये। इस पवित्र नगर में पहुँच कर उन्होंने देखा कि जिन महापुरुष ने उनको मार्ग दर्शन दिया है उनके पास में बहुत बड़ा स्त्री और पुरुषों का समूह बना रहता है। वह मकान जिस में वह स्वयं विराजमान हैं शहर की एक भीतरी गली में बना हुआ है ब्रह्मचारी यह विचार कर कि मैं नग्न हूँ बाघाम्बर धारी हूँ प्रभुजी गृहस्थ वेश में हैं ऐसी स्थिति में वह उस नगर की एक सराय में जाकर श्री प्रभुजी के चरणारविन्द का चिन्तन करता हुआ समाहित चित्त हो कर बैठ गया। नगर के लोगों ने देखा एक अद्भुत ब्रह्मचारी आया है। वह परम विरक्त है जब से आया है तभी से एक आसन से समाधिस्थ है। न तो खाता है न पीता है न मल-मूत्र त्याग करता है जब से आया है तब से स्थाणुवत मूर्तिमान हो कर के बैठा है हुआ है। लोगों ने विचार किया यह ब्रह्मचारी पूर्ण समर्थ, कोई योगी राज है। समाधि से उठने पर हम लोगों को दया की दृष्टि से देखेंगे तो जन्म सफल हो जायेगा और

सभी लोग सेवा में लगे रहने लगे सामने मिठाइयों के और फलों के ढेर लग गये किन्तु ब्रह्मचारी न उठे न उन लोगों के लाये हुए फल और फूलों को देखा। अन्ततः परिणाम यह हुआ कि इस ब्रह्मचारी की चर्चा पूरे नगर भर में फैल गई। शनैः शनैः कुछ लोगों ने श्री प्रभुजी के चरणों में भी ब्रह्मचारी का हाल बताया और श्री प्रभुजी से आग्रह किया कि आप भी कुछ रोज जंगलों में रह आये हैं किन्तु इस प्रकार के दिव्य महात्मा के दर्शन आपने न किये होंगे अतः हमारे साथ चलिये हम आप को योगीराज के दर्शन करायेंगे। श्री प्रभुजी ने पहले तो इन्कार किया कि भाई हम क्या करेंगे तुम्हीं लोग दर्शन कर आओ किन्तु बाद में उनके मन में दया आई और अपने बच्चे का कुछ भला करने की भावना से उठ कर उन लोगों के साथ चल पड़े। हाल बाजार के मुख्य द्वार के सामने श्री संतराम की सराय में वह ब्रह्मचारी बैठे थे। श्रीप्रभुजी वहां पहुंच कर समाधिस्थ बैठे हुए ब्रह्मचारी के पृष्ठ भाग में बैठ गये। असंख्य आदमियों की बड़ी भारी भीड़ ने उस महातेज के दर्शन करके ब्रह्मचारी छटपटा कर उठ बैठे और श्री प्रभुजी के चरणों में साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किया। जिसको देख कर लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे अपने मन में सोचते कुछ और ही थे। वे सोचते थे कि ब्रह्मचारी के ऐश्वर्य और विभूति को देख कर श्री प्रभुजी उसका आदर करेंगे किन्तु हुआ इसके विपरीत। ब्रह्मचारी साष्टांग दण्डवत् प्रणाम कर रहा है और प्रभुजी के चरणारविन्द को रो रो कर अपने नेत्र जल से धो रहा है। श्री प्रभुजी ने ब्रह्मचारी को दोनों हाथों से उठा कर अपने कंठ से लगालिया और कहा कि बेटा घबरा क्यों रहे हो हम तो तुम्हारे पास प्रतिक्षण हैं ही। ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया प्रभो मैं आपको गृहस्थ वेश में देखकर और बहुत से स्त्री पुरुषों के समूह में बैठे हुए देख कर आपको चरणारविन्द तक नहीं पहुंच सका श्री दीनबन्धु जी आपने भी बहुत कड़ी परीक्षा लेकर आज तीन रोज के बाद मुझे आकर दर्शन दिये हैं। श्री प्रभुजी ने उसके कान में एक मंत्र गुनगुना कर उसकी जिह्वा को स्पर्श करके बढ़ा दिया और खेचरी का ताला लगा दिया। ब्रह्मचारी को खेचरी मुद्रा के द्वारा खेचरत्व प्रदान करके जैसे आया था उसी प्रकार बद्रीकाश्रम को लौटा दिया और आज्ञा दी कि बेटा अब तुम वनखण्ड में ही रहना कंदमूल-फल खाना। नगर और बस्तियों का सहारा नहीं लेना। ब्रह्मचारी श्री प्रभुजी की इस आज्ञा को शिरोधार्य कर तत्काल लौट गये लोगों का लाया हुआ भेंट पूजा का सामान उन्होंने देखा भी नहीं। थोड़ी दूर चलने पर ही वह अन्तर्ध्यान हो गये। लोग देखते के देखते रह गये। उनको पुनः ब्रह्मचारी के दर्शन प्राप्त न हो सके। अपने मन के लड्डू अपने मन में ही फूलते रहे किन्तु श्री प्रभुजी की महती कृपा और उनके योग प्रभाव को जान

गये कि इस पंडित वेश में छुपे हुए कोई सर्व समर्थ महापुरुष हैं। इनको साधारण ब्राह्मण और पंडित समझ करके लापरवाही में रहना उचित नहीं। इन की सेवा से सब लोगों को लाभ उठाना चाहिए। उसी समय से शहर के लोग श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में नत मस्तक हो कर दर्शनार्थ आने लगे और उनके वैभव को समझने लगे। समर्थ महापुरुषों को कोई जान नहीं सकता कोई समझ नहीं सकता केवल मात्र वही लोग जानते है जिनको वह जनाना चाहें।

"सो जानै जिनि देहि जनाई।
जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई॥

—ॐ—

—क्षमा—

क्षमा एक प्रकार की चित्तवृत्ति है, जो तितिक्षा के अन्तर्गत मानी गई है। तितिक्षा सरदी गर्मी आदि सहन करने की सामर्थ्य को कहते हैं और क्षमा वह वृत्ति है, जिससे हम दूसरे के द्वारा पहुँचाये गये कष्ट को चुपचाप सह लेते हैं और उसके प्रतिकार का प्रयत्न नहीं करते। यह दैवी गुण है। मानव-धर्म के दस लक्षणों में इसका प्रमुख स्थान है। यह पाशव वृत्तियों पर अनायास विजय प्राप्त कर लेता है।

क्षमा विश्व के सभी महान् धर्मों का मेरुदण्ड है। हिन्दू धर्म की आधार शिला यही क्षमा है। विष्णु और भृगु मुनि के प्रसङ्ग को कौन नहीं जानता। क्षमा-धरित्री-सी व्यापक एवं शाश्वत क्षमा का गुण गान हिन्दू धर्म का मूल राग है। पृथ्वीतल पर मातृत्व से गौरवमय दूसरा कोई नहीं और इस मातृत्व की गरिमा का सम्यक् दर्शन क्षमाशीलता में ही है बौद्ध धर्म के भव्य भवन का स्वर्ण कलश भी यही क्षमा है। विश्वात्मभाव और भूतदयाकी सम्पोषिका क्षमावृत्ति बौद्ध दार्शनिकता का प्राण है। कालिङ्ग विजयी अशोक की प्रतिहिंसा का उपशम 'क्षमा' के संकेत पर ही हुआ यवन देश, स्वर्णभूमि, सिंहलद्वीप, तिब्बत, चीन आदि प्रशस्त भूभागों में क्षमा का एकच्छत्र राज्य शताब्दियों तक रहा और बौद्ध-धर्म के प्रभाव में सहस्राधिक वर्षों तक समस्त मानवता क्षमा का सम्बल लेकर ही अपना पथ सुगम बनाती रही। ईसाई धर्म का तो कहना ही नहीं बाइबिल मूलतया क्षमा की ही गुण गाथा है। क्षमा के अवतार महात्मा ईसा के अनेक उपदेश दूसरों के दोषों, अपराधों और त्रुटियों को स्वेच्छा से सहन कर लेने का पाठ पढ़ाते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि मानव-संस्कृति के मौलिक तत्त्वों में क्षमा का विशिष्ट स्थान है है और मनुष्य-जाति के अब तक के प्रमुख धर्मों में इसको अनिवार्य माना गया है।

—श्री पारसनाथ सिंह

प्रारब्ध

[श्री हुकमसिंह कुशवाह बी.ए.]

सुखमापतितं सेव्यं,
दुःखमा पतितं तथा।
चक्रवत् परिवर्त्तन्ते,
दुखानि च सुखानि च॥

नीतिकार कहते हैं कि सुख के भोग आवें तो उन्हें भोग लो। वे भोग हमारे गत जन्मों के शुभ कर्मों के फलस्वरूप ईश्वर के अनुग्रह से प्राप्त हुए हैं। अतः अपने जीवन के प्रत्येक क्षण को प्रभु प्रीत्यर्थ शुभ कर्म में लगाओ, न कि मौज-शौक में खर्च करो। वैसे ही दुःख के भोग आ जावें तो वे भी अपने कर्मों के ही फल हैं अत एव उन्हें भी धैर्य से सहन करो और इसके लिये किसी को दोष न दो। फिर सुख का समय सदा बना नहीं रहता, इसलिए उस समय जितनी हो सके भलाई करलो, वैसे ही दुःख के दिन भी सदा नहीं रहते इसलिए शान्ति से उस समय को भी बिता दो।

गाड़ी के पहिये में बहुत-सी अरायें होती हैं। पहिये के कारण वे अरायें ऊपर-नीचे आया जाया करती हैं। इसी प्रकार जीवन के पहिये के सुख दुःख रूपी अरायें फिरती ही रहती हैं, कोई अरा सदा एक जगह स्थिर नहीं रह सकती, जब सारा विश्व चक्र घूमता रहता है तो, फिर सुख दुःख स्थिर कैसे रह सकते हैं?

क्रिया शरीरोद्भवहेतुरादृता,
प्रिया प्रिये ते भवतः सुरागिणः।
धर्मेतरौ तत्र पुनः शरीरकं,
पुनः क्रिया चक्रवदीर्यते भवः॥

कहने का तात्पर्य यह है कि यदि कर्म-रूपी बीज न हो तो शरीर रूपी वृक्ष उत्पन्न ही न हो, उग ही न सके। अर्थात् जीव के शरीर धारण करने का कारण प्रारब्ध-भोग के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है। कर्माशय न हो तो फिर प्रारब्ध का निर्माण ही कैसे हो, जिसको भोगने के लिये जीव को भोगानुरूप शरीर धारण करना पड़ता है। सुख प्राप्त करने की आशा से जीव अहङ्कारपूर्वक कर्म करता है और परिणाम में जिस कर्म के फल स्वरूप सुख की अनुभूति होती है, उसमें उसका राग हो जाता है। और जहां दुःख का अनुभव होता है उसके प्रति द्वेष हो जाता है।

सुखानुशयी रागः दुःखानुशयी द्वेषः।

आगे चलकर इन राग द्वेष के जोड़ों से धर्म-अधर्म पाप-पुण्य आदि के अनेक द्वन्द्व उत्पन्न हो जाते हैं और जीव जन्म-मरण के चक्र में जकड़ जाता है। बीज से जैसे वृक्ष उत्पन्न होता

है और वृक्ष में से फिर अनन्त बीज शक्ति उत्पन्न होती है, उसी प्रकार कर्म का फल भोगने के लिए शरीर उत्पन्न होता है और शरीर से फिर असंख्य कर्म होते हैं, जिनको भोगने के लिये जीव को अनेक शरीर धारण करने पड़ते हैं, इस प्रकार वर्तमान में हमने जो शरीर धारण किया है वह प्रारब्ध कर्म का फल भोगने के लिये ही है। अतएव प्रारब्ध का स्वरूप क्या है, इसको देखने का प्रयत्न यहाँ किया जायेगा।

प्रारब्ध भी है तो कर्म ही अर्थात् वस्तुतः 'प्रारब्ध कर्म' यह शब्द प्रयोग होना चाहिए। परन्तु कर्म शब्द अध्याहार रह जाता है और केवल शब्द रूढ़ि रह गया है।

गीता कहती है कि—

नहि कश्चित् क्षणमपि,
जातु तिष्ठत्यकर्म कृत।
—३/३/५

अर्थात् कोई देहधारी क्षण भर भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता।

तथा पुनः

शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।

अर्थात् शरीर का निर्वाह भी कर्म किये बिना नहीं हो सकता। इस प्रकार कर्म करना तो अनिवार्य है अतः पहले कर्म का स्वरूप समझना चाहिए। तभी प्रारब्ध का स्वरूप समझ में आयेगा।

कर्म का सर्वप्रथम सिद्धान्त यह है:

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं,
कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म,
कल्पकोटि शतैरपि॥

जो शुभाशुभ कर्म किये होते है उनके फल-स्वरूप सुख दुःख के भोग भोगे बिना छुटकारा नहीं, क्योंकि कोटि-कोटि कल्प बीत जाने पर भी भोगे बिना कर्म का नाश नहीं होता। कर्म का फल भोगने से बचने का कोई उपाय नहीं है।

यह बात 'योग दर्शन' में बहुत ही सुन्दर रीति से बतलाई गई है:

क्लेशमूल कर्माशयो,
दृष्टादृष्ट जन्मवेदनीयः।

क्लेश है मूल में जिसके अर्थात् क्लेश है उद्भवस्थान जिसका ऐसे जो कर्म समूह है, वे ही वर्तमान जन्म तथा भावी जन्म देने वाले हैं। इससे अगले सूत्र में कहते है।

'सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा:।

जब तक कर्माशय रूपी बीज है, तब तक उसके फल स्वरूप में जीव को शरीर धारण करने पड़ते हैं और उस उस शरीर के जन्म के पहले ही उसके भोग का निर्माण हो जाता है। उसी के साथ भोग के अनुरूप योनि निश्चित होती है और भोग के अनुसार आयु की मर्यादा भी निश्चित हो जाती है। इस प्रकार

जब तक कर्म बीज है, तब तक शरीर धारण करना अनिवार्य है और शरीर है तब तक कर्म भी अनिवार्य है। इस प्रकार जन्म मरण का चक्र चलता रहता है। योग-दर्शन भी, जन्म-मरण के चक्र का कारण कर्म है, यह प्रतिपादन करता है।

अब यह देखना है कि प्रारब्ध कैसे बनता है? इससे उसका कार्य क्षेत्र ठीक समझ में आजायेगा। हमने देखा कि कर्म करना अनिवार्य है तथा उसका फल भोगना तो उससे भी अधिक अनिवार्य है। इस प्रकार जब तक शरीर है, तब तक कर्म तो प्रतिदिन हुआ ही करेंगे। इस प्रकार प्रतिदिन होने वाले कर्म को 'क्रियमाण' कर्म कहते हैं। इन क्रियमाण कर्मों में कुछ तो इतने क्षुद्र होते हैं कि वहीं फल प्रदान करके समाप्त हो जाते हैं। कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो तात्कालिक फल नहीं दे सकते परन्तु परिपाक होने पर फल देते हैं, ऐसे कर्म परिपक्व होने तक 'चित्त' नाम के गोदाम में इकट्ठे होते जाते हैं। इस प्रकार गोदाम में इकट्ठे हुए कर्मों को 'संचित कर्म' कहते हैं। यह बात एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट की जा सकती है। पानी पीने के लिये प्यास लगी। झुक कर घड़े से पानी लेकर पीलिया। अब यह पानी पीने के लिये किया हुआ कर्म पानी पीने के साथ वहीं समाप्त हो गया, क्योंकि पानी पीलेना ही उसका फल था। परन्तु जब तुम पानी पी रहे थे उस समय एक अभ्यागत आया और उसने पानी पीने के लिये मांगा। तुमने उसको आदर से बिठा कर ठण्डा पानी बड़े प्रेम से पिला दिया। इसके बदले उसने चाहे शुक्रिया। उपकार भी माना हो तो भी इतने से इस कर्म का फल नहीं मिल गया। दूसरे को सुख पहुंचाने वाले कर्म का फल तो उसके पाककाल में ही मिलता है। इस लिये यह कर्म संचित में शामिल हो जायेगा और पाककाल की राह देखेगा। और पाककाल की राह देखेगा। और पाककाल में किसी अन्य देह का प्रारब्ध बनकर भविष्य में फल देता है।

इस प्रकार संचित में ढेर के ढेर कर्म इकट्ठे होते जाते हैं और पाककाल तक वहीं पड़े रहते हैं। ऐसे संचित में पड़े हुए कर्मों की गति भी बड़ी विचित्र होती है। उनमें से कुछ ऐसे होते हैं कि एक ही कर्म का फल भोगने के लिए जीव को एक से अधिक देह धारण करने पड़ते हैं। दूसरे कुछ ऐसे भी कर्म होते है कि एक ही देह में अनेक कर्मों के फल भोग लिये जाते हैं। जब वर्त्तमान शरीर का प्रारब्ध समाप्त हो जाता है, तब वह नाश को प्राप्त हो जाता है। और उसी समय संचित में जो-जो कर्म फल देने के लिये तैयार हुए रहते हैं, उनको अलग कर लिया जाता है, इसके बाद उस भोग के अनुरूप एक या अधिक देह निश्चित हो जाती है और भोग के अनुसार इन देहों की आयु भी निश्चित हो जाती है। इस प्रकार परिपक्व हुए कर्मों का फल भोगने के लिये जो देह उत्पन्न होती है उस देह के वे कर्म

(प्रारब्ध) कहलाते हैं। इस लिए जिन प्रारब्ध कर्मों का फल भोगने के लिये ही देह उत्पन्न होती है, उनको भोगे बिना कैसे काम चल सकता है। तीर हाथ में छूट जाने पर जैसे वह किसी भी प्रयत्न से लौट कर नहीं आता उसी प्रकार जिस प्रारब्ध के भोगने के लिये शरीर उत्पन्न हुआ है, उसको भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता।

अब यह देखना है कि कौन से कर्म संचित में शामिल नहीं होते। वे समझ बालक और ज्ञानी-आत्मज्ञानी के द्वारा होने वाले कर्म संचित में नहीं जाते, क्योंकि ये कर्म कर्तापन के अहङ्कार और फलाशा से रहित होने के कारण उनकी गणना कर्मों में नहीं होती। इस कारण भुने हुए बीज के समान उनमें भावी अंकुर ही नहीं निकलता और संचित में जाने का कोई प्रयोजन नहीं रहता। जो कर्म श्वासोच्छ्वास की क्रिया के समान फल की आशा के बिना सहजभाव से होते है, वे भी संचित में नहीं जाते, क्योंकि भविष्य में उनको कोई फल नहीं देना होता। ये कर्म कैसे होते हैं, इसका बहुत सुन्दर चित्र योगवाशिष्ठ में इस प्रकार खींचा गया है—

शय्यदेशे कनिष्ठस्य यथा,
पान्थस्य पादयोः।
स्पन्दो विगत संकल्पः,
तथा स्पन्दः स्वकर्मसु ॥

हम घर से बाजार जाने के लिये निकले। यह संकल्प हुआ कि पैर अपने आप हमको बाजार ले जाते हैं, और वहां जाकर खड़े हो जाते हैं। बीच में दूसरा कोई संकल्प नहीं करना पड़ता, यह प्रतिदिन के अनुभव की बात है। काम धन्धे के लिये जाने वाले लोगों को भी ऐसा अनुभव रोज होता है। इस लिए श्री वशिष्ठ महाराज कहते हैं कि इस प्रकार कोई संकल्प किये बिना जो जो कर्म होते हैं वे कर्म कोई फल नहीं देते, इस लिये उनको संचित में जाने की जरूरत नहीं होती।

अब प्रारब्ध का स्वरूप जानने से क्या लाभ है, यह विचारणीय है। पहले तो जिस मनुष्य को कर्मफल भोग में विश्वास है और जिस को नहीं है, उन दोनों में आकाश या पृथ्वी या दिन और रात्रि जैसा अन्तर है। एक वृद्ध आदमी और उसके पौत्र का सहाध्यायी दोनों साथ जा रहे थे। वृद्ध को रास्ते में एक सोने की मुहर जैसा कुछ दीख पड़ा। उसने उसे उठाया और उसे सोने की मुहर जानकर वापस फेंक दिया। साथ चलते हुए युवक ने यह देखा और उसने तुरन्त उस मुहर को उठा लिया। एवं उसे देखकर अपनी जेब में डाल लिया। और बूढ़े से पूछा—दादाजी ? आपने सोने की मुहर को रक्खा क्यों नहीं ? क्यों वापस फेंक दिया ? तब वृद्ध ने कहा—"पहले तुम बतलाओ कि तुमने क्यों उसको अपनी जेब में डाल लिया ? युवक ने कहा—'दादाजी ! यह गिन्नी है। इसके साठ सत्तर रुपये आयेंगे। इससे महीने दो महीने का चाय पानी तथा सिनेमा का खर्च निकल जायेगा। हां, यदि किसी की जेब काट कर निकालता तो वह चोरी कहलाती।

परन्तु यह तो, 'सहज मिले सो दूध बराबर'- इस प्रकार अचानक प्राप्त लाभ को भला कौन समझदार छोड़ देगा ? अब आप बताइये कि आपने मुहर को क्यों फेंक दिया। तब बूढ़ा बोला—'भाई' मेरा विचार दूसरे ही प्रकार का है। देखो जब तुमने सोने की मुहर को जेब में डाला, उसी क्षण प्रभु की बही में वह मुहर तुम्हारे खाते में नाम लिखी गई और उसके ऊपर चक्रवृद्धि ब्याज चालू हो गया। इस प्रकार जिसकी मुहर खोई थी उसे लाभ हो गया। वह मुहर ज्योंही तुम्हारे नाम लिखी गई, त्योंही उसके खाते में जमा हो गई और उस पर चक्रवृद्धि ब्याज चालू हो गया। यों मुहर खोने वाले के तुम देनदार बन गये। और इस जन्म में, नहीं तो, दूसरे किसी जन्म में तुमको उसका देना चुकाना ही पड़ेगा। और उस समय एक मुहर की जगह हजार या दस हजार मुहरें तुमको देना ही पड़ेंगी। इस प्रकार जो मनुष्य बिना हक का लेता है वह तो देनदार ही बनता है। और उसे ब्याज सहित चुकाये बिना उसका छुटकारा नहीं होता। भले ही आज तुम इसे न मानो, परन्तु तुम्हारे मानने से देना चुकाये बिना तुम नहीं छूट सकते, क्योंकि यह तो ईश्वर के घर का अटल नियम है।

प्रारब्ध का स्वरूप जानने से पहला और सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि मनुष्य जब निश्चय कर लेता है कि प्रारब्ध में जो भोग लिखा कर लाये हैं, उससे अधिक किसी भी काल में मिलेगा ही नहीं, तब वह यथा प्राप्त सुख दुःख में समता रखना सीखता है और यों होने पर उसमें संतोषवृत्ति पैदा होती है। संतोष ही सुखी जीवन का रहस्य है, इस लिए उसका जीवन सुखमय स्थिति में बीतता है। योग सूत्र कहता है -

'संतोषादुत्तम सुखलाभः'

संतोष ही वास्तविक और बड़े से बड़ा सुख है।

श्री भर्तृहरि भी कहते हैं—

स तु भवति दरिद्रो,
यस्य तृष्णा विशाला।
मनसि च परितुष्टे,
कोऽर्थवान् को दरिद्रः॥

जिसकी तृष्णा विशाल है, यानी कभी पूरी होती ही नहीं वही सच्चा दरिद्र है। और जब मन में संतोष होता है तो गरीबी या श्रीमन्ताई ये शब्द निरर्थक हो जाते हैं।

श्री तुलसी दास जी भी कहते हैं -

जब आवे संतोष धन,
सब धन धूरि समान।

इससे भी बड़ा लाभ यह है कि सुख भोग प्राप्त करने या दुःख की निवृत्ति करने में वह अनीति या अन्याय के मार्ग से नहीं जाता, क्योंकि उसको विश्वास है कि प्रारब्ध से अधिक तो मिलने वाला नहीं। तब फिर पापकर्म करके भविष्य जीवन क्यों बिगाड़ा जाये। इसलिए वह पापकर्म से दूर रहता है।

फिर वह जान जाता है कि सुख का जो भोग मिला है वह मेरे पुण्य कर्म का फल है। और जो दुःख आता है वह मेरे पाप कर्म का फल है। इससे वह पापकर्म करता ही नहीं है इतना ही नहीं, चाहे जैसी गरीबी हो, वह सदा पुण्य कर्म ही करता रहता है। पेटभर खाने के लिये न मिलता हो तो भी उसमें से कुछ परोपकार में देता है। उसको विश्वास है कि यह जीवन तो जो पूंजी लेकर आया है उसी से पूरा करना है।

इसलिए वर्त्तमान जीवन की चिन्ता न करके उसका लक्ष्य भावी जीवन के सुधारने में ही रहता है और इस कारण वह सदा ही परोपकार करता रहता है। और बिना हक की कोई वस्तु नहीं लेता। इस सम्बन्ध में सुभाषित ने कहा है।

भिक्षुका नैव भिक्षन्ति,
बोधयन्ति गृहे गृहे।
दीयतां दीयतां लोका,
अदातुः फलमीदृशम्॥

तात्पर्य यह है कि भिखारी याचक केवल भीख ही नहीं मांगते बल्कि घर-घर घूमकर उपदेश का काम करते है। वे अपना प्रत्यक्ष दृष्टान्त देकर कहते है कि 'भाइयो! दो, दो दिये बिना नहीं मिलता। पूर्वजन्म में हमने कोई दानपुण्य नहीं किया था इसी से आज भीख मांगने की बारी आयी है।

तुम्हारे पास आज जो कुछ है वह पिछले जन्म में किये शुभ कर्मों का ही फल है इसलिए इस जन्म में भी खूब दान पुण्य करो।

परन्तु आज का समझदार (?) आदमी चलता है उल्टी राह पर। उसे चाहिए सुख परन्तु बीज बोता है दुःख के। उसको खाना है दूध-भात और उपजाता है कोदों। उसे खाना है गेहूं और बोता है कुलथी। फिर चाहा हुआ फल न मिले तो देव को दोष देता है। इस प्रकार के समझदार मनुष्य के स्वभाव का वर्णन करते हुए श्री व्यासजी कहते हैं:

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति,
पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।
न पाप फलमिच्छन्ति,
पापं कुर्वन्ति यत्नतः॥

मनुष्य जानता है कि पुण्य कर्म का फल सुख है और उसको सुख की आवश्यकता है, यह भी सत्य है। परन्तु वस्तुतः वह पुण्य कर्म तो करता ही नहीं। बल्कि पापकर्म ही किये जाता है। दुःख किसी को भी नहीं चाहिए फिर भी पापकर्म ढूंढ ढूंढ कर करता है तब फिर दुःख के सिवा और क्या मिल सकता है। इसलिये सुख शान्ति चाहने वाले को शुभ कर्म करना चाहिए। बबूल बोकर आम खाने की आशा गलत है।

इस प्रकार प्रारब्ध को स्वरूप जानकर उसमें विश्वास रखने वाला व्यक्ति सुखमय

योग जीवन-लक्ष्य मेरा

[श्री राघवेन्द्र तिवारी ग्रा० पो० बमौरी कलाँ ललितपुर उ.प्र.]

—ॐ—

यह सुपावन आरती है।
दूर करने को अंधेरा॥

योग, जीवन लक्ष्य मेरा।

इस पार, शुचि सम्पन्न है।
उस पार है गो-लोक जाना॥
क्षय, जरा दुर्दिन विवशता।
दूर करता व्याधि नाना॥

प्राप्ति भगवत की।
सुरभि दे ज्यों सवेरा॥

हैं सुचंचल मन तदपि।
एकाग्रता की कुंजियां हैं॥
इस पुरातन मेखला में जुड़ी।
जितनी हथकड़ियां हैं॥

मूर्त हो जावे।
अनश्वर शुभ बसेरा॥

यह सकल गोतीत।
किन्तु अगाध वैभव सम्पदा॥
सकल विघ्न विनाश करके।
चिरंजीव रखे सदा॥

सिन्धु सा विश्वास।
मारुत सदृश फेरा॥

—ॐ—

जीवन बिताता है और जिसका इसमें विश्वास नहीं उसका जीवन हाय-हाय में चला जाता है।

वर्त्तमान जीवन में जैसे शरीर निर्वाह के लिये मनुष्य प्रारब्ध के अधीन है उससे भी वह विशेष स्वतन्त्र है भावी जीवन का निर्माण करने में। भूतकाल तो लौटाया नहीं जा सकता परन्तु वर्त्तमान और भविष्य तो मनुष्य के हाथ में है। इसलिए भविष्य का निर्माण करने में वह पूर्ण स्वतन्त्र है।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने यह बात इस प्रकार बतलाई है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

—गीता २/४७

मनुष्य की इच्छा हो तो वह पापकर्म कर के नरक में जा सकता है। उसकी इच्छा हो तो वह शुभ कर्म करके स्वर्ग में भी जा सकता है। और चित्त शुद्ध करके, ज्ञान सम्पादन करके मुक्त होना हो तो वैसा भी कर सकता है। उसकी इच्छा में कोई बाधक नहीं हो सकता। निःसन्देह विरोधी वासनायें उसके मार्ग में अवरोध अवश्य करतीं है, परन्तु मनुष्य जैसे फलभोग में पराधीन है वैसे वह वासनाओं का दास नहीं है, क्योंकि वासनाओं का क्षय तो पुरुष के प्रयत्न से हो सकता है, ऐसा करने के लिए केवल दृढ़ निश्चय होना चाहिए (गीता ६/३६) मानव जीवन की सार्थकता भी इसी में है।

—•—

शक्तिमान के दर्शन

प्रकृति और परमात्मा कहो जीव और ब्रह्म कहो, माया और मायापति कहो— सब परमात्मा की अचीन्हा शक्ति का ही खेल है। परमात्मा में सर्वज्ञता, सर्व व्यापकता और सर्व शक्तिमत्ता उसकी शक्ति के आधार पर ही है, जो बीज रूप से उसमें रहती है। यह सारा संसार वृक्ष उसी बीज रूप शक्ति का विस्तार है। साधक इस वृक्ष को बीज में लय करने की साधना करके जीवन्मुक्त बनता है और आत्म तृप्त होकर विश्व को भी उस लाभ से तृप्त करता है।

पिण्ड और ब्रह्माण्ड दोनों की रचना सात्विक रूप से एक समान है सुप्त रूप से शक्ति सबके शरीर में विद्यमान रहती है। उसका जागरण करके शरीर में ही उसकी प्राप्ति की जाती है : सत्य तप और ब्रह्मचर्य के द्वारा अपने ही अन्तरात्मा में शक्ति और शक्तिमान के दर्शन होते है।

—श्रुति-सार

श्रद्धा

[कुमारी भारती]

श्रद्धा का शब्दार्थ है—सत्य को धारण करना, सचाई को जीवन का अङ्ग बना लेना।

भगवान कृष्ण ने कहा है—अज्ञानी, अश्रद्धालु और संशयात्मा पुरुष का नाश होता है।' श्रद्धा मानव के विकास का प्रमुख साधन है। सत्य का ज्ञान कठोरता और तत्परता से करो। ज्ञान होने पर उस सत्य को धारण करने का दृढ़ संकल्प करके आगे बढ़ो।

विश्वास करो, तुम्हारे आध्यात्मिक और लौकिक विकास में श्रद्धा का प्रधान स्थान है। इसके बिना तुम बहुत दूर तक न चल सकोगे।

परम सत्य प्रभु ही है। वह तुम्हारे अङ्ग-संग है। वह तुम्हें नहीं छोड़ता। वह तो तुम्हारे सोते हुए जागता है तुम उसे नहीं जानते वह तो तुम्हें जानता है। इतना ही नहीं प्यार भी करता है क्या तुम उस प्यार को नहीं चाहते? भूल न करो, जीवन का एक-एक क्षण बहुमूल्य है। अनन्त काल चक्र में तुम्हारी आयु के कुछ वर्ष है ही कितने, इसलिए इस शरीर और दूसरे साधनों से पूरा-पूरा लाभ उठाओ। जीवन का परम लाभ है अनन्त सत्य और प्रेम रूप प्रभु को समझना और धारण करना।

तुम इसे कठिन समझते हो। वास्तव में वह कठिन नहीं। कमी यह है कि तुम इसकी आवश्यकता नहीं समझते।

भाई! अन्तर्मुख होकर देखो तुम्हें जो कार्य कठिन और असम्भव प्रतीत होता है वह वास्तव में वैसा कठिन और असम्भव नहीं है। श्रद्धा करो। कुछ करने का साहस करो।

तुम्हारी आंखें बाहर की ओर ही देख रही है जो कुछ तुम्हें दीखता है तुम उसी पर विश्वास करते हो, परन्तु तुम्हारी आंखें भी तो उसी को देखती हैं जिसको तुम देखना चाहते हो। तुम जिसे देखना नहीं चाहते वह सामने होता हुआ भी तुम्हें नहीं दीखता। वास्तव में आंख की भी आंख भीतर है। तुम्हें उसी को समझना चाहिये।

सामने देखो विश्व कितना सुन्दर प्रतीत होता है। पर्वत, नदी और अरण्य कितने मनोहर हैं क्या तुम्हें इस सब में कोई अनुपम कतत्व और सौन्दर्य नहीं प्रतीत होता।

तुम इतने भोले न बनो कि इस स्पष्ट सत्य को भी निगल जाओ।

श्रद्धा के बिना तुम्हारा जीवन वैसे ही नीरस होगा जैसे पानी के बिना नदी, और सुगन्ध के बिना पुष्प, तुम्हें श्रद्धा माता की गोद में अनिर्वचनीय आनन्द मिलेगा।

श्रद्धा को अपने हृदय आसन में बैठने के लिए बुलाओ, प्रातः मध्यान्ह सोते जागते श्रद्धा का आह्वान करो। श्रद्धा को हाथ से न जाने दो। जब तुम निराशा के गहरे गर्त में पड़कर निराश्रय हो जाओगे तब यह श्रद्धा माता ही तुम्हें आशावान बना सकेगी। श्रद्धा का पाथेय लेकर यदि तुम बीहड़ जीवन जंगल में निकल जाओगे तब भी तुम निर्भय रहोगे।

साधकों के प्रश्न तथा उनके उत्तर

(श्री सद्गुरुदेव जी द्वारा)

प्रश्न—कृपा कर बतलाइये कि शक्ति प्राप्त करने के क्या-क्या साधन हैं ?

उत्तर—मनुष्य का मन शक्तिमय है किन्तु चञ्चल होने के कारण शक्ति उसमें प्रायः नहीं रहने पाती। प्राणीमात्र का मन भटकता रहा करता है कभी रूप को देखता है, कभी शब्द को सुनता है, कभी किसी का स्पर्श करता है, कभी गन्ध ग्रहण करता है आदि-आदि पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन को अपने-अपने विषयों के अन्दर लगाये रहा करती हैं जिस ज्ञानेन्द्रिय के द्वारा मन जहाँ लगता है उसी आकर्षण में अपनी बढ़ी हुई शक्ति को दे दिया करता है अतः वासना-भोगी मनुष्य शक्ति से हीन होकर खाली हो जाया करता है। शक्ति संवर्द्धन का सबसे पहला उपाय है कि मनुष्य अपने मन को एकाग्र करे। ज्यों-ज्यों मनुष्य का मन एकाग्र रहेगा त्यों-त्यों उसमें शक्ति का विकास होता चला जायेगा और वह यदि अपने आपको वासना गर्त से बचा सका तो एक दिन शक्ति का केन्द्र बन जायेगा। अतः मन का एकाग्र होना ही शक्ति प्राप्ति का प्राथमिक साधन है।

प्रश्न—गुरुदेव ! मनुष्य के मन में अशांति क्यों रहती है। प्रायः संसार में देखने में आता है कि प्राणी मात्र के मन दुःखी और अशांत हैं वह प्रयत्न करने पर भी सुख शांति की ओर नहीं जा पाते। अतः कृपा करके ऐसा उपाय बतला दीजिये जिससे मनुष्य का अशांत जीवन शांति और सुखमय हो जाये।

उत्तर—सौम्य ! मन त्रिगुणात्मक है। मन में कभी सतोगुण का विकास होता है कभी रजोगुण का एवं कभी तमोगुण का विकास हुआ करता है। तमोगुण का मन जड़ रहा करता है रजोगुण का मन बहुत अधिक चंचल और अशांत रहा करता है और सतोगुण का मन बिल्कुल पवित्र शांत, प्रेम और आनन्दमय रहा करता है। अतः अशांत जीवन को शांत व सुखी बनाने के लिए अपने मन को सत्वस्थ बना लेना चाहिये। यदि साधक का मन सतोगुण से युक्त हो जायेगा

तो उसका जीवन सुखी और शांत भी हो जावेगा आसुरी सम्पत्ति को छोड़कर वह दैविक सम्पत्ति वाला बन जावेगा और दैवी सम्पत्ति मनुष्य की मुक्ति का कारण है।

प्रश्न—गुरुदेव ! दैवी व आसुरी सम्पत्ति किसे कहते है वह कृपा कर खोल कर बतलाइये।

उत्तर—दैवी और आसुरी सम्पत्ति का वर्णन स्वयं अखिलात्मा आदि पुरुष भगवान श्रीकृष्ण ने अपने श्री मद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय में किया है वह इस प्रकार से है :

दैवी सम्पत्ति के लक्षण

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञान योग व्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्व लोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥

अर्थात् : प्राणीमात्र से निर्भयता उत्तरोत्तर सत्त्व की शुद्धि ज्ञान और योग में स्थिति, दान करना इन्द्रियों पर दमन करना, यज्ञ करना, स्वाध्याय करना, तपस्या एवं नम्रता, मनसा-वाचा-कर्मणा किसी को दुःख न देना सत्य बोलना, किसी पर भी क्रोध न करना, त्याग की भावना का कायम रहना मन की शान्ति-चञ्चलता का अभाव प्राणी मात्र पर दया, सभी प्राणियों में लोलुपता का अभाव चापलता का अभाव बुद्धिमानी एवं नम्रता, तेज क्षमा धैर्य, शुद्धि, किसी से द्रोह न करना, मान सम्मान के झमेले में न फँसना यह सब दैवी सम्पत्ति के लक्षण है। इसके अतिरिक्त निम्नाङ्कित लक्षण आसुरी सम्पत्ति के है।

आसुरी सम्पत्ति

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ॥

अर्थात् :—दम्भ, दर्प, अभिमान, क्रोध एवं कठोर बर्ताव और अज्ञान ये आसुरी सम्पत्ति के लक्षण हैं।

"दैवी संपद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता"

दैवी सम्पत्ति मुक्ति का कारण है और आसुरी सम्पत्ति बन्धन का। अतः जो लोग योगाभ्यास के बल से अपने मन में दैवी सम्पत्ति का उदय कर लेते हैं उनका जीवन शांत और सुखी हो जाता है। अतः शांत व सुखी जीवन के लिये आसुरी सम्पत्ति को दबा कर दैवी सम्पत्ति को जगा लेना जरूरी है।

प्रश्न—प्रभो! ऐसा सुनने में आया है कि जिन आत्माओं का जन्म स्त्री जाति के अन्दर होता है उन सब का जन्म पुरुष जाति के अन्दर नहीं होता। वह हमेशा स्त्री योनियों में ही जन्म लेते रहेंगे चाहे वह मनुष्य योनि में जन्म लें चाहे पशु-पक्षी आदि में जन्म लें और चाहें देव लोक में वह अप्सरा ही बने किन्तु जन्म स्त्री जाति में ही रहेगा।

उत्तर—नहीं ऐसी कोई बात नहीं। स्त्रियों का स्त्री जाति में जन्म लेने का एक बहुत बड़ा कारण है और वह यह कि उनकी पूरी जिन्दगी स्त्री रूप में ही गुजरती है और देह त्याग करते समय भी उनके मन में स्त्रीत्व की भावना बनी रहती है। वे लोग शरीर छोड़ती हुई यह सोचती रहती है कि मैं मर रही हूँ, सामने मेरा पति खड़ा है, भाई बहन खड़े है पुत्र पौत्र खड़े हैं किन्तु अब मैं इन लोगों से अकेली बिछुड़ रही है। इसी धारणा के साथ वह देह त्याग कर देती है अतः जन्म उसे स्त्री जाति में ही लेना पड़ता है। जिस प्रकार से स्त्री जाति स्त्रीत्व का स्मरण करते हुए देह त्याग करती है इसी प्रकार से पुरुष जाति में जन्म लेने वाला एक व्यक्ति जिन्दगी भर अपने आप को पुरुष समझता रहता है और देह त्याग के समय तक उसके मन में पुरुषत्व की भावना बनी रहती है। उस भावना के फलस्वरूप पुरुष पुरुष जाति में ही जन्म लेता है। वैसे आत्मा एक निर्मल ज्योति है उसका पुल्लिङ्ग एवं स्त्री लिंग से कोई सम्बन्ध नहीं। स्त्री योनि में जन्म लेने से वह अपने आप को स्त्री मानता है और पुरुषों में जन्म लेने वाला अपने आपको पुरुष मानता है। इसी धारणा के अनुसार स्त्री और पुरुष दोनों को अपने सजातीय शरीर को धारण करना पड़ता है। क्योंकि हमारे शास्त्र का सिद्धान्त है कि—

यम यम वापि स्मरन्भावम् त्यजत्यंन्ते कलेवरम् ।
स तम समेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावितः ॥

अर्थात मनुष्य अन्तिम समय जिन जिन भावों का स्मरण करता हुआ शरीर छोड़ता है उन उन भावों से प्रेरित हो कर के वह वैसा ही जन्म ग्रहण कर लेता है इसलिए योगाभ्यास परायण स्त्री यदि अपनी बुद्धि वृत्ति को आत्माकार बना लेती है और 'सोऽहम्' 'शिवोऽहम्' का रटन करती है, अपने आप को ब्रह्म स्वरूप देखती है और जानती है तो अवश्य ही वह पुरुषत्व में परिणत हो सकती है।

प्रश्न:—हे गुरुदेव साधना सफल जल्दी किस प्रकार हो सकती है और उसकी जल्दी सफलता के लिये साधक को किन किन नियमों का पालन करना आवश्यक है ?

उत्तर:—सौम्य, श्री भगवान कृष्ण ने अपनी श्री मद्भगवद्गीता में ज्ञान प्राप्ति के तीन उपायों का वर्णन किया है।

१. पहला उपाय—'श्रद्धावानलभतेज्ञानम्,' अर्थात् श्रद्धा के द्वारा मनुष्य ज्ञान प्राप्त करता है।

२. दूसरा उपाय—'तत्परोज्ञानम् लभते.' जो मनुष्य निष्ठा के साथ अपनी साधना में लगातार संलग्न रहता है वह ज्ञान को पा जाता है।

३. तीसरा उपाय—'संयतेन्द्रियो ज्ञानम् लभते,' अर्थात् जिसने अपनी इन्द्रियों का पूरा नियंत्रण किया है वह ज्ञान को पाजाता है।

साधक तत्परता के साथ अपनी साधना में लगा रहे उसका श्रद्धा और विश्वास इतना अटल हो कि कोई भी उसके विचारों में परिवर्तन न कर सके। वह व्यक्ति अपनी संलग्नता के साथ इच्छापूर्वक श्रद्धा सहित लगा रहे और संयतेन्द्रिय हो, इन्द्रियों पर पूरा कन्ट्रोल हो जिससे ज्ञानेन्द्रियां उसकी साधना की उपार्जित निधि को खो न सके तो वह जल्दी से जल्दी साधना की पराकाष्ठा को पहुंच जाता है।

प्रश्न— हे गुरुदेव ! परमात्मा के दर्शन करने का सरल उपाय क्या है जिससे जल्दी से जल्दी परमात्मा के दर्शन प्राप्त हो सकें।

उत्तर—सौम्य, स्वाध्याय की साधना ही एक ऐसी साधना है जिससे मनुष्य के हृदय में जल्दी से जल्दी परमात्मा का प्रकाश हो जाया करता है। हमारे शास्त्र का ऐसा नियम है।

स्वाध्यायाद्योगमासीत् ।
योगात् स्वाध्याय मामनेत् ॥
स्वाध्याय योग सम्पत्तया ।
परमात्मा प्रकाशते ॥

अर्थात् : स्वाध्याय के बल से मनुष्य योग को प्राप्त हो और योग से स्वाध्याय का मनन करे। स्वाध्याय और योग दो की सम्पत्ति इकट्ठी हो जाने पर परमात्मा का प्रकाश हो जाता है।

प्रश्न— हे गुरुदेव ! स्वाध्याय किसको कहते हैं और स्वाध्याय और योग दोनों का एक साथ अभ्यास कैसे करें। कृपा कर समझा दीजिये।

उत्तर—सौम्य, प्रणवादि पवित्राना जप स्वाध्यायः, मोक्ष शास्त्राणां अध्ययनमुवा स्वाध्यायः।

अर्थात् : ओंकारादि परमात्मा के पवित्र नामों का जप करना स्वाध्याय कहलाता है अथवा मुक्तिदाता शास्त्रों का पाठ करना स्वाध्याय कहलाता है।

प्रश्न— हे गुरुदेव ! प्रणवादि के अन्दर किन-किन नामों का समावेश है और मुक्ति दाता शास्त्र कौन-कौन से हैं।

उत्तर—सौम्य ! प्रणवादि में ब्रह्मा, विष्णु शिव सभी के नाम हैं। यदि कोई साधक 'ॐ नमः शिवाय' जपता है, वह प्रणवादि है और यदि कोई साधक 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' जपता है तो वह भी प्रणवादि है और यदि वह "ॐ नमो नारायणाय" जपता है तो वह भी प्रणवादि है। इसी प्रकार से परमात्मा के अन्य नाम भी प्रणव के अन्दर समावेशित हैं। परमात्मा का रूप श्रद्धामय है जिसको जैसी श्रद्धा होती है वह वैसा ही दिखलाई देने लगता है। भूमण्डल पर जितने प्राणी हैं उन सभी में मति भेद है और अपनी-अपनी मतियों के अनुसार नाना मार्गों की कल्पना करके साधक परमात्मा की ओर चलते हैं और अपनी श्रद्धा के अनुरूप ही प्रभु के स्वरूप को वह जान भी लेते हैं।

प्रश्न— प्रभो ! कृपा कर मुक्ति दाता शास्त्र और बतलाइये।

उत्तर - मुक्तिदाता शास्त्रों में उपनिषद, गीता, रामायण, शिव सहस्र नाम, विष्णु सहस्रनाम, गोपाल सहस्रनाम आदि-आदि सभी मुक्ति दाता शास्त्रों के अन्तर्गत हैं।

प्रश्न— हे गुरुदेव ! अब कृपा करके स्वाध्याय की साधना की विधि और समझा दीजिये जिससे मैं जन्म-मरण के चक्कर से बच जाऊँ ।

उत्तर—वत्स ! स्वाध्याय की साधना के साधक को चाहिये कि वह इस प्रकार के के नियम बनाये जिससे उसका किसी भी प्रकार से पतन नहीं और उत्तरोत्तर उत्थान की ओर बढ़ता चला जावे । जैसे स्वाध्याय के साधक को चाहिये वह प्रातः काल लगभग ४ बजे ब्राह्म मुहूर्त में उठे शौच दातुन, स्नान एवं नैतिक व्यायाम करने के बाद वह अपनी साधना में बैठ जावे । साधक को प्रथम चाहिये कि वह किसी भी मन्त्र या नाम का दो घंटे लगातार जप करे । दो घंटे जप करने के बाद गुरुदेव की बताई विधि से अपने इष्ट देव का ध्यान करे । ध्यान कम से कम एक घंटा करे । एक घंटा ध्यान करने के बाद गद्‌गद् कंठ होकर किसी भी स्तोत्र का पाठ करे । जैसा भगवान शिव के उपासक के लिये शिव सहस्त्र नाम शिव, महिम्न स्तोत्र, शिव ताण्डव स्तोत्र, आदि-आदि का पाठ करें । इस प्रकार से साधक जप और स्वाध्याय परायण होकर अपने अभ्यास को छः महीने यदि लगातार निभा जाता है तो उसको पूर्णत्वालोक हो जाता है । और वह व्यक्ति योग ध्यान परायण बन जाता है । जो साधक गल्पबाजी में पड़े रहते हैं वह लोग यथार्थता को नहीं पा सकते । शास्त्र का सिद्धान्त है :

जपश्रान्तः शिवं ध्यायेद् ध्यान श्रान्तः शिवं जपेत् ।
जप ध्यान समायुक्तः परं ब्रह्माधि गच्छति ॥

अर्थात् : जप से थका हुआ भगवान् शिव का ध्यान करे और ध्यान से थका हुआ उनके नाम व मन्त्र का जप करे । जप और ध्यान में लगा हुआ मनुष्य अवश्य-अवश्य परब्रह्म को पा जाता है । यह परम कल्याण दायी साधना है । जो लोग इसका पालन करेंगे वे लोग अवश्य ही निःश्रेयस सिद्धि के अधिकारी बन जायेंगे ।

—ॐ—

❁ परीक्षा का दिन ❁

संसार में सब कुछ अनिश्चित है । यदि कोई चीज निश्चित है तो वह है मृत्यु । मृत्यु का दिन ही साधक की अन्तिम परीक्षा का दिन होता है । उस समय यदि शान्ति नहीं रही, अखण्ड स्मरण नहीं रहा, साहस नहीं रहा, कर्त्तव्य का बोध नहीं रहा तो हम फेल कर दिये जायेंगे । मृत्यु का कष्ट तो सबको समान ही होता है पर साधक को उसमें मुस्कराने की शक्ति मिलती है और शरणागति का आनन्द मिलता है ।

—योगी विष्णुतीर्थ

पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्

[स्वामी विष्णुतीर्थ जी के उपदेश]

चेतन का चमत्कार

प्रकृति के सभी तत्व जड़ है और सर्वदा चेतन से ओतप्रोत रहते हैं। सूर्य हमसे नौ करोड़ मील दूर है फिर भी उसी तेज गरमी के कारण हम को छाता लगाकर चलना पड़ता है। बिजली एक सैकिण्ड में पृथ्वी की कई परिक्रमा कर लेती है। बिजली की चाल प्रति सैकिण्ड १८४००० मील है। हवा-पानी व अग्नि के तूफान कितने भयानक होते हैं और भूकम्प के विनाशकारी दृश्य तो हृदय कँपा देते हैं। यही सब चेतन के अद्भुत चमत्कार हैं।

रहस्यपूर्ण खेल

यदि मन और चित्त की कल्पनाओं को मनुष्य देख सकता तो संसार पागल हो जाता बाहर हँसी और भीतर जेब काटने की इच्छा! साक्षी के अभाव में हम भीतर का व्यापार मन-माना चलाते हैं। भगवान के मन को स्वतन्त्र और गुप्त कर्मी बना कर इस रहस्य पूर्ण खेल का निर्माण किया है।

अज्ञानी सौदागर

आप सबको जानते है। सूर्य, चन्द्र, रूस, अमरीका, घर, गाँव आदि को भी जानते है, लेकिन इनमें से कोई आपको नहीं जानता। यहाँ तक कि आपका देह भी आपको नहीं जानता। न आपके सूट-बूट ही आपको जानते हैं। इस तरह आप इकतरफा सम्बन्ध मानने वाले अज्ञानी सौदागर हुए। जो हमको नहीं जानते उनके प्रति वासना बढ़ाना कौन सी समझदारी है।

सुख दुःख तो मन में है

सुख-दुःख संसार की किसी वस्तु में नहीं, वह तो मन में है। राह में सम्पत्ति पड़ी हुई नजर आयी। एक भाई उसे जीवन का जहर समझ कर आगे बढ़ गया, लेकिन दूसरा भाई

से इधर-उधर देखकर चोर की तरह उस वस्तु को उठा लाया। चीज एक ही थी लेकिन उससे एक के मन में त्याग और दूसरे के मन में विकार पैदा हुआ। विकार वस्तु में नहीं था मन में था। भिन्न भिन्न मनः स्थिति के कारण ही मनुष्य सुखी दुःखी बनता है इसे समझना धर्म है।

अभेद वृत्ति रखिए

गाढ़ निद्रा में शेर-बकरी, कुत्ता-बिल्ली और भेड़-भेड़िया एक साथ सो सकते हैं। जब हम गहरी नींद में सोये पड़े हों तब हमारे शरीर पर से साँप निकल जाय, फिर भी हम नहीं डरते। लेकिन जागने पर सब एक दूसरे से डर कर भागने लगते हैं। निद्रा में अभेद था और जागते ही भेद खड़ा हो गया। अभेदवृत्ति में शान्ति थी लेकिन भेद में अशान्ति का तूफान खड़ा हो गया। सुख भेद उचित व्यवहार करते हुए भी अभेद वृत्ति रखने का अभ्यास कर्म कर के ही प्राप्त किया जा सकता है। यह अभेद वृत्ति मन को निर्मल बना देती है।

—❀—

योग प्राप्ति के दो साधन

योगियों का परम प्राप्तव्य 'योग' है। इस योग की प्राप्ति के दो साधन हैं—(१) अभ्यास और (२) वैराग्य। अभ्यास और वैराग्य से चित्तवृत्ति-निरोध की प्राप्ति होती है—'अभ्यास वैराग्याभ्याम् तन्निरोधः' (यो०सू०१।१२) योगः चित्त-वृत्तिनिरोधः " (यो०सू०१।२)

योग का मूल वैराग्य है, वैराग्य ही योग का 'परम साधक' है। भगवान श्री-कृष्ण ने गीता में जिन्हें ब्रह्म से एकीभाव प्राप्त करने का अधिकारी बताया है, उनमें वैराग्य सम्पन्न व्यक्ति की भी गणना की है—'ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः।' (१८।५२) वैराग्य का लक्ष्य शान्ति है। उसका मार्ग ज्ञान है। उसका कर्तव्य-कर्म शोध है। समस्त प्राणियों का एकमात्र लक्ष्य शान्ति है। श्री-रामोपाख्यान में सीता ही शान्ति है। जहाँ शान्ति वहीं पूर्णता होगी जहाँ पूर्णता होगी, वही एकरस, अखण्ड एवं आत्यान्तिक आनन्द होगा। अतः शान्ति समस्त प्राणियों का नैसर्गिक एवं प्रतिक्षण-प्रवृत्त व्यापार है। क्यों कि उसके बिना सुख कहाँ —

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

(गीता २।६६)

योग का चतुर्थ अंग--प्राणायाम

[श्री हीरालाल शास्त्री, फ़र्रुखाबाद]

—❀❀❀—

योग का साधक सबसे पहिले यम, और नियम जो कि योग शास्त्र में बतलाये गये है उनका भली प्रकार अभ्यास करले जैसा कि मैं पिछले लेखों में वर्णन कर चुका हूँ क्योंकि यम, नियम के अभ्यास के बिना योग में सम्यक् प्रवृत्ति प्रायः नहीं होती है। इनका अभ्यास होने पर आसनों का ज्ञान भली प्रकार प्राप्त करले जिनका वर्णन भी कई लेखों में कर चुका हूँ तथा अन्य सज्जनों ने भी विविध प्रकार के आसनों का वर्णन चित्र युक्त भी किया है फिर उनमें अभीष्ट साधनानुसार किसी आसन का इतना अभ्यास बढ़ाले कि तीन घण्टे तक कम से कम स्थिर भाव से बैठने का अभ्यासी हो जाय तब प्राणायाम के अभ्यास में तत्पर हो जाय, भगवान् कृष्ण ने भी गीता में कहा है कि:—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य,
स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितं नाति नीचं,
चैलाजिन कुशोत्तरम्॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा,
यतचित्तेन्द्रिय क्रियः।
उपविश्यासने युञ्ज्यात्,
योगमात्मविशुद्धये॥
समं काय शिरोग्रीवं,
धारयन्नचलं स्थिरः।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं,
दिशश्चानवलोकयन्॥
प्रशान्तात्मा विगतभी-
र्ब्रह्मचारि व्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो,
युक्त आसीत् मत्परः॥

उक्त प्रकार से आसन पर स्थिर होकर प्राणायाम साधन के लिये पिङ्गला नाड़ी से धीरे-धीरे वायु को खींचे जिससे शब्द न हो यथा शक्ति शनैः शनैः प्राण को खींच कर कुम्भक करे पुनः इडा नाड़ी से रेचन करे फिर इसी इडा नाड़ी से द्वारा वायु को खींच कर यथा शक्ति कुम्भक करे पश्चात् पिङ्गला नाड़ी से धीरे-धीरे निकाले इसके लिये हठयोग दीपिका में कहा है कि—

प्राणं सूर्येणचाकृष्य,
पूरयेदुदरं शनैः।
विधिवत् स्तम्भकं कृत्वा,
पुनश्चन्द्रेण रेचयेत्॥

नियम– येनत्यजेन तेन पीत्वा,
धारयेदति रोधतः ।
रेचयेच्च ततोऽन्येन,
शनैरेचन वेगत ॥

इस प्रकार प्रातः, दोपहर, सायम्, अर्ध-रात्रि इन चार समयों में ८०, ८० बार कुम्भक प्राणायाम करे ।

दीपिका– प्रातमध्यं दिने सायं-
मर्ध रात्रेच कुम्भकान् ।
शनैरशीति पर्यन्तं,
चतुर्वारं समभ्यसेत् ॥

यद्यपि प्राणायामों के बहुत भेद हैं परन्तु उक्त प्रकार से अभ्यास सिद्ध होने पर उन भेदों का अभ्यास करना उचित होता है ।

यथा– सूर्य भेदन मुज्जायी,
सीत्कारी शीतली तथा ।
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा,
प्लाविनीत्यष्ट कुम्भका ॥

इस प्रकार सूर्य भेदन, उज्जायी, सीत्कारी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा, प्लाविनी भेद से ८ प्रकार के प्राणायाम कहे गये है ।

इस प्रकार जब प्राणायाम का अभ्यास धीरे-धीरे दृढ होता जाय तब बन्धनों का अभ्यास करे ।

बन्धन तीन प्रकार के कहे गये है जालन्धर उड्डियान, मूल बन्ध, इन तीन बन्धों का धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ावे ।

जालन्धर बन्ध– कण्ठमाकुञ्च्य हृदये,
स्थापयेच्चिबुकं दृढम् ।
बन्धो जालन्धराख्योऽयं,
जरा मृत्यु विनाशकः ॥

अर्थात् कण्ठकासंकोचन करके ठोड़ी को हृदय के समीप चार अंगुल पर दृढ़ता से स्थापित करे यह जालन्धर बन्ध कहा जाता है ।

उड्डियानबन्ध-प्रयत्न विशेषण नाभिप्रदेशस्य
पृष्ठत आकर्षणाडुड्डियान बन्ध ।

अर्थात् विशेष प्रयत्न द्वारा नाभि प्रदेश का पीठ से जो आकर्षण किया जाता है उसे उड्डियान बन्ध कहते हैं ।

मूलबन्ध– पार्ष्णि भागेन सम्पीड्य
योनिमा कुञ्चयेद् गुदम् ।
अपान मूर्ध्वमाकृष्य,
मूल बन्धोऽभिधीयते ॥

अर्थात् गुल्फ प्रदेश से योनि (गुदा और मेढ़ के मध्य भाग) को दबावे और अधोगति वाले अपान वायु को ऊर्ध्व गति करे अर्थात् अपान वायु का आकर्षण ऊपर को करे यह मूल बन्ध कहलाता है ।

इन बन्धों के साथ प्राणायाम का अभ्यास करने में शीघ्र सफलता प्राप्त होती है अतः प्राणायाम के अभ्यास में तीनों बन्ध करना भी आवश्यक है ।

प्राणायाम के भेद पूरक, कुम्भक, रेचक पहिले ही कहे जा चुके हैं उन पर ध्यान देकर प्राणायाम का अभ्यास करे और कुम्भक के भी दो भेद बतलाये हैं।

कुम्भक के भेद सहित, और केवल भेद से दो प्रकार का होता है जो पूरक और रेचक के साथ कुम्भक होता है उसे सहित कहते है और जो इन से रहित होता है वह केवल कुम्भक कहा जाता है।

केवल कुम्भक पूरक और रेचक के बिना जो केवल कुम्भक ही किया जाता है उसे केवल कुम्भक नाम से कहते हैं इस की यह विशेषता होती है कि धीरे-धीरे जब अभ्यास दृढ़ होता जाता है तब पूरक रेचक के बिना केवल कुम्भक ही करना लाभदायक होता है इस प्रकार का साधक शीघ्र ही सफल प्रयत्न होकर समाधि योग्य बन जाता है इस प्रकार धारणा ध्यान-समाधि रूप संयम में प्रवृत्त होकर सरलता से समाधि युक्त होकर अभीष्ट सिद्धि प्राप्त करने में सफल होता है।

प्रारम्भ में साधक इस प्रकार प्रवृत्त होकर सफलता प्राप्त करे तब आगे की क्रियाओं में प्रवृत्त हो।

—✽✽✽—

हे प्रभो !

ऋचं वाचं प्र पद्ये मनो यजुः प्रपद्ये ।
साम प्राणं प्र पद्ये चक्षुः श्रोत्र प्रपद्ये ॥
वागोजः सहौजो मयि प्राणापानौ ।

हे परमात्मन ! आपकी कृपा से मैं [ऋचं वाचं प्र पद्ये] ऋग्वेदादि ज्ञानयुक्त श्रवण युक्त होके उसका वक्ता होऊं। (मनो यजुः प्र पद्ये) तथा यजुर्वेदाभिप्रायार्थ सहित सत्यार्थ मनन युक्त मन को प्राप्त होऊं। (साम प्राणं) ऐसे ही साम वेदार्थ निश्चय निदिध्यासन सहित प्राण को सदैव प्राप्त होऊं। (वागोजः) वाग्बल वक्तृत्व बल मनोविज्ञान बल मुझको आप देवें। सहौजः शरीर बल नैरोग्य दृढ़तादि गुण युक्त को मैं आपके अनुग्रह से सदैव प्राप्त होऊं। मयि प्राणा पानौ। हे सर्व जगजीवनाधार ! प्राण और अपान दोनों मेरे शरीर में सब इन्द्रियों सब धातुओं की शुद्धि करने वाले स्थिर आयुवर्धक और अंगरक्षक हों ताकि मैं सुख पूर्वक सदैव आपकी उपासना में तत्पर रहूँ।

—वेद वाणी

स्वामी प्रणवानन्द जी से भेंट

[प्रेषक श्री विजयसिंह]

—ॐ—

बचपन से ही परमहंस योगानन्द जी को नये-नये स्थानों का भ्रमण करना अच्छा लगता था। मातृ-वियोग के पश्चात् इनके मन में प्रबल भावना हिमालय जाने के हेतु उदय हुई। मात्र ११-१२ वर्ष की अवस्था में गृह त्याग की भावना किसी व्यक्ति में उदय हो, इस बात का सीधा अर्थ है कि उस व्यक्ति ने पूर्व जन्मों में कमाई की है। तभी गृहत्याग ऐसी अपरिपक्व अवस्था में ईश्वरानुभूति के लिए सम्भव है। जगत गुरु भगवान शंकराचार्य इत्यादि महान आत्माओं की गाथा सर्वविदित है। हिमालय जाने की उत्कट अभिलाषा जो बालक मुकुन्द के मन में घर कर गयी थी, धीरे-धीरे क्रियात्मक रूप धारण करने के कारण, घर वालों पर भी यह बात प्रकट हो चुकी थी। अतः कुछ मोह तथा अल्प अवस्था को देखते हुये घर के सभी वरिष्ठ जन इन्हें हिमालय न जाने देने के लिए यथेष्ठ रूप से सचेष्ट थे। इसीलिए कई बार अज्ञात रूप से जब वे हिमालय की तरफ बढ़े तो लोगों की पूर्व सतर्कता ने इनके कार्यक्रम को विफल बना दिया।

एक दिन मात्र बारह वर्ष की अवस्था में मुकुन्द ने अपने पिता से प्रार्थना की कि-मैं बनारस भ्रमणार्थ जाना चाहता हूँ। आप निश्चिन्त रहें। हम घर लौट आवेंगे। इस बात का विश्वास करके हमें वहाँ जाने की आज्ञा प्रदान करें। इसके पूर्व भी इनके पिता इन्हें अल्प वय में ही अनेकों तीर्थ स्थलों में घूम आने की आज्ञा दे चुके थे। अतः इस बार भी उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी। साथ ही उन्होंने दो पत्र देते हुये इन्हें कहा कि बनारस जाकर तुम हमारे मित्र केदार नाथ बाबू से मिलना उनसे मेरा एक कार्य है। परन्तु उनका पता हमें ज्ञात नहीं है। अतः पहला पत्र हमने स्वामी प्रणवानन्दजी के नाम लिखा है जिसमें तुम्हारा परिचय दे दिया है। पहले तुम इनसे ही मिलना। स्वामी जी के परिचित व्यक्तियों में से केदार नाथ बाबू हैं। अतः स्वामी जी द्वारा तुम्हें केदार बाबू का पता मिल जायेगा। स्वामी जी के दर्शन से तुम्हें लाभ ही होगा। अन्त में उन्होंने चेतावनी देते हुये कहा—हां! अब घर से भागने की चेष्टा मत करना। इसके साथ ही उन्होंने आने-जाने का रेलवे पास तथा रुपया मुकुन्द को दिया।

मुकुन्द बनारस पहुँचकर, सीधे स्वामी प्रणवानन्द जी के मकान पर ही पहले गये। मकान का बाहरी द्वार खुला था। अतः अन्दर प्रवेश करते ही उनको एक बड़ा कमरा दिखाई पड़ा जिसके द्वारा वे ऊपर दूसरे मंजिल के एक बड़े कमरे में पहुँचे। वहाँ एक संन्यासी महात्मा अत्यन्त हृष्ट-पुष्ट एवं बाघम्बर पहने हुये ऊँचे आसन पर बैठे हुये थे। मुकुन्द को देखते ही उनके चेहरे पर परम सुखकारक मुस्कान छा गयी। उन्होंने पूर्ण परिचित मित्र की भाँति मुकुन्द का बिना परिचय प्राप्त किये ही स्वागत किया। वे बोले—बाबा आनन्द आओ। मुकुन्द ने आगे बढ़कर उनके चरणों में प्रणाम किया तथा पूछा—क्या आप ही स्वामी प्रणवानन्द जी हैं? उन्होंने कहा—हाँ! और तुम भगवती के पुत्र हो न? उनका यह जानना और कहना बिना मुकुन्द के द्वारा पिता का दिया हुआ पत्र पाये ही हुआ था। अतः मुकुन्द हैरान था कि यह सब कैसे जान रहे हैं। अभी तो मैंने अपना परिचय पत्र भी इन्हें नहीं दिया है और अब देना भी व्यर्थ है। तभी महात्मा जी बोले-हाँ! तुमसे केदार बाबू को मिलवाने के लिए मैं उनको ढूंढ दूंगा। मुकुन्द पुनः आश्चर्य में पड़ गया कि इनको सारी बातें ज्ञात होती जा रही हैं। महात्मा जी मुकुन्द के पिता के बारे में दो एक प्यार भरी बातें कहने लगे। इसी संदर्भ में वे बोले—क्या तुम जानते हो? मैं दो पेन्शन पा रहा हूँ। एक तुम्हारे पिता के अनुभूति के द्वारा क्योंकि पहले मैं उनके रेलवे का लिए मैं कार्य कर चुका हूँ। दूसरा पेन्शन परम पिता के द्वारा प्रदत्त है।

मुकुन्द को महात्मा का अन्तिम कहा वचन बड़ा विचित्र लगा। अतः उसने उनसे पूछा—किस प्रकार का पेन्शन परम-पिता-ईश्वर आपको देते हैं? क्या वे आपके गोद में रुपया गिराते हैं। प्रश्न बड़ी ही निरीहिता पूर्वक पूछा गया था। स्वामी जी खूब हँसे। फिर बोले कि—नहीं, रुपया नहीं निरन्तर चिर शांति की पेन्शन हमें मिली है। कई वर्षों के प्रगाढ़ ध्यान का फल यह है। अब मैं रुपये की परवाह नहीं करता हूँ। हमारी भौतिक आवश्यकतायें थोड़ी हैं जो पूरी हो जाती हैं। आगे चलकर तुम इस दूसरे प्रकार के पेन्शन का सही अर्थ जान लोगे।

एकाएक बात करते-करते महात्मा गम्भीर हो गये। गम्भीरता के साथ ही-साथ वे बिलकुल स्थिर थे। एक विचित्र वायु मण्डल उनको घेर लिया था। पहले उनकी आँखें बड़ी तेज से चमकीं जैसे वे कुछ बड़े ही गौर से रुचिकर वस्तु कोई देख रहे हों। फिर ढीली पड़ गईं। इस मौनावस्था में मुकुन्द सोचने लगे कि हमें अभी पिता के मित्र का पता स्वामी जी नहीं बताया। उस समय उस एकान्त कमरे में केवल स्वामी जी और मुकुन्द ही थे। मुकुन्द ने कमरे को साधारण रूप से देखते हुये

स्वामी जी का खड़ाऊं उनके आसन के नीचे रक्खा हुआ देखा। तभी स्वामी जी बोले—छोटे महाशय, चिन्ता मत करो। जिस व्यक्ति से तुम मिलना चाहते हो वह आधे घण्टे में यहीं आ रहा है। मुकुन्द ने देखा कि स्वामी जी सारी की सारी उसके मन की बातें बराबर पढ़ते जा रहे हैं।

स्वामी जी एवं मुकुन्द कमरे में मौन बैठे थे। कुछ समय बाद जब मुकुन्द ने अपनी घड़ी देखी तो पाया कि स्वामी जी द्वारा कथित आधा घण्टा अब समीप आ चुका है। उसी समय मौन तोड़ते हुये स्वामी जी ने कहा—मैं सोचता हूँ केदार नाथ बाबू दरवाजे के पास आ चुके हैं। उसी समय मुकुन्द ने सुना कोई ऊपर आ रहा था। एक विचित्र आश्चर्य मुकुन्द के मन में जगा। आखिर पिता के मित्र यहां कैसे बुलाये गये। बिना किसी संदेश वाहक के जरिये। वह तेजी से कमरा छोड़कर सीढ़ी की ओर बढ़ा। आधी सीढ़ी पर उसे एक पहले गौर वर्ण के व्यक्ति मिले। उनसे उसने पूछा—क्या आप केदार नाथ बाबू हैं? मुकुन्द का आवाज अति उत्तेजित था। आगन्तुक ने कहा हां, क्या तुम्हीं भगवती के पुत्र हो, हमारा यहां इन्तजार करते हुये? मुकुन्द बोखलाया। उसने पूछा—आप यहां किस प्रकार आ गये हैं। उन्होंने कहा—आज कुछ सभी बड़ी विचित्र ढंग से घटित हो रहा है। एक घण्टे से कुछ कम ही पहले स्वामी प्रणवानन्द जी हमें गंगा घाट पर मिले थे जब मैं स्नान करके तैयार हो चुका था घर जाने के लिए। उन्होंने कहा कि तुम उनके घर हमारा इन्तजार कर रहे हो। उन्होंने कहा—क्या तुम हमारे साथ अभी चलोगे? मैं प्रसन्नता पूर्वक उनकी बात मान गया। हम दोनों लोग अगल-बगल चले आ रहे थे कि स्वामीजी ने एकाएक रुककर हमसे पूछा कि तुम हमारे घर कितनी देर में पहुँच सकते हो? मैंने उनसे कहा कि करीब आधे घण्टे में। वे इस पर बड़े ही गूढ़ार्थक दृष्टि से हमें देखते हुए बोले अच्छा अभी हमें कुछ और दूसरा कार्य करना है तुम आओ। घर तुम जब पहुँचोगे हम वहीं मिलेंगे। ऐसा कहकर वे कुछ कदम आगे बढ़े और थोड़े ही भीड़ में वे गायब हो गये। यह देखकर हम तेजी से यहां चले आ रहे हैं।

केदार नाथ बाबू की बातें सुनकर मुकुन्द का होश हवास ही उड़ गया। वह बोला मैं आपकी बातों का विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ। मेरा दिमाग ही खाली होता जा रहा है। क्या आप उनसे यथार्थ रूप में अभी मिले हैं? क्या उनका स्पर्श आपने किया था? क्या आपने उनके पैरों से चलने पर उत्पन्न ध्वनि को सुना था। इतने सारे लगातार प्रश्नों को करते हुये देखकर कुछ क्रोधित होते हुये वे मुकुन्द से बोले मैं नहीं समझ पा रहा हूँ तुम क्या कह रहे हो? क्या मैं तुमसे कुछ झूठ कह रहा हूँ। तुम इतना भी नहीं समझ सकते हो कि तुम्हारे बारे में मैं स्वामी जी के सिवा और किसके

द्वारा यह जान सकता है कि तुम उनके घर पर इस समय हो। मुकुन्द ने आश्चर्य पूर्वक कहा मैं लगभग एक घण्टे से ऊपर हुआ यहाँ आया हूँ। तब से एक सेकेण्ड के लिए भी स्वामी जी यहाँ से कहीं नहीं हिले हैं। पूर्व की सारी घटनायें मुकुन्द ने उनको बतायीं। मुकुन्द की बातें सुनकर केदारनाथ जी की आँखें फटी की फटी रह गईं। वे बोले क्या हम लोग इस भौतिक संसार में हैं या कोई स्वप्न देख रहे हैं। मैंने अपने जीवन भर में ऐसा चमत्कार न देखा था न सुना था। मैं तो सोचता था अन्य संन्यासियों की तरह यह स्वामी जी भी साधारण ही हैं। परन्तु यह तो काया—निर्माण की ताकत वाले हैं।

केदारनाथ जी के साथ मुकुन्द ने कमरे में प्रवेश किया। केदार बाबू पैरों में स्वामी जी के खड़ाऊं की ओर संकेत करते हुये मुकुन्द से बोले–स्वामी जी इसे पहने हुए थे तथा जैसे बाघम्बर इस समय पहने हैं ऐसे ही तो अभी हमें मिले थे। स्वामी जी मुस्कराते हुए बोले–इन सब बातों से क्यों तुम लोग घबड़ाये हुये हो? योगी से प्रकृति का कोई सूक्ष्म से सूक्ष्मतर रहस्य छिपा नहीं है। मैं सदैव अपने शिष्यों से यहीं बैठे हुए कलकत्ता जैसी दूर जगह में बातें करता रहता हूँ। हो सकता है कि यह सब कुछ बालक मुकुन्द के मन में योग जिज्ञासा उत्पन्न करने के लिए ही स्वामी जी ने किया हो। परन्तु इन बातों से उनके मन में उत्साह की जगह उस समय एक भय ही छाया था। यह देखकर स्वामी जी शक्ति युक्त दृष्टि से मुकुन्द को देखते हुए अपने प्यारे गुरुदेव श्री लाहड़ी महाशय के बारे में कुछ बातें उस समय बताने लगे। स्वामी प्रणवानन्द जी ने बातें करते हुये बताया कि गुरु की सहायता साधक को क्या नहीं प्रदान कर सकती है। वे बतलाते कि जिन दिनों वे अपने एक गुरु-भाई के साथ आठ घण्टे ध्यानाभ्यास में बिताया करते थे, उन दिनों रात्रि में तो अभ्यास किया जाता था तथा दिन में आफिस का काम भी करना पड़ता था। इस प्रकार का अभ्यास वे लगातार आठ वर्ष तक करते रहे। इसका परिणाम आश्चर्य जनक रहा। अनेकों आध्यात्मिक शक्तियों का इनके मन में वास हो गया था। परन्तु उस अनन्त अवर्णनीय सत्ता के सम्पर्क से अभी इनकी दूरी थोड़ी बाकी थी। हजार प्रयास के पश्चात् भी उस अनन्त में तन्मयता नहीं प्राप्त हो रही थी। एक दिन स्वामीजी अपने आध्यात्मिक प्रगति की कठिनाई उनके समक्ष निवेदन की। उन्होंने कहा—हे दिव्य गुरुदेव! बिना उस दिव्य सत्ता के आमने सामने हुये अब जीवन कायम रखना असम्भव होता जा रहा है। अतः आप कृपा करके हमारी इच्छा पूरी करें। श्री लहरी महाशय ने कहा–कि मैं क्या कर सकता हूँ। तुम और जोरों से अपना ध्यानाभ्यास बढ़ाओ। प्रणवानन्द जी ने कहा–मेरे गुरुदेव! मेरे ईश्वर! आप इस समय जो हमारे समक्ष साकार रूप हैं आपका ही वह अनन्त रूप हमें ध्यान में नहीं मिल पा रहा

है। अतः आपकी कृपा से ही आपके उस अनन्त स्वरूप का विन्दर्शन सम्भव है। आप मुझ दीन पर कृपा करें। प्रणवानन्द जी की बातें सुनकर श्री लाहड़ी महाशय जी अति प्रसन्न चित्त होकर उनके सिर पर अपना हाथ रखते हुये बोले—जाओ तुम जब ध्यान में बैठोगे तुम्हें सफलता मिलेगी। पुनः हँसते हुए बोले मैंने तुम्हारे और ब्रह्म परमसत्ता के बीच विचवई कर दी है। उस दिन रात्रि में जब स्वामी जी ध्यान में बैठे तुरन्त ही ब्रह्म में ऐक्यता स्थापित हो गई। तब से निरन्तर उस अनन्त सत्ता से सदैव सहज ही सम्बन्ध बना रहने लगा। मोह, भ्रम, माया का कोई आवरण उसी दिन के बाद उन्हें उस ब्रह्म सत्ता से अलग नहीं कर सका। कुछ काल व्यतीत होने पर प्रणवानन्द जी पुनः अपने गुरुदेव जी के चरण-कमलों में गये और निवेदन किया कि हे प्रभो, अब आफिस में मुझ से कार्य नहीं हो पाता है। एक विचित्र खुमारी सदैव छाई रहती है। मुझे अब नौकरी से छुट्टी दिलवाकर पेन्शन करवा दीजिए। श्री लाहड़ी महाशय ने कहा कि तुम अपने अधिकारी को अपने मन्तव्य का प्रार्थनापत्र दो। तुम्हारा कार्य हो जावेगा। प्रणवानन्द जी ने अपने डाक्टर को, थोड़े काल के ही बाद एक प्रार्थनापत्र दिया, उसमें उन्होंने लिखा था कि मेरी रीढ़ की हड्डियों में भयंकर कंपन एवं सनसनाहट होती है जिसके कारण कार्य करने में मैं अपने को असमर्थ पा रहा हूँ, डाक्टर ने बिना पूछताछ या किसी प्रकार का निरीक्षण किये ही इनको अधिकतम पेन्शन देने हेतु अपना मान्यता-पत्र अधिकारियों के पास भेज दिया। जिससे जल्द ही स्वामी जी को पेन्शन होकर कार्य से अवकाश प्राप्त हो गया।

इन सब बातों को सुनकर बालक मुकुन्द के मन का सारा भय जाता रहा। उसे आध्यात्मिक संसार एवं श्री लाहड़ी महाशय की अनुपम कृपा का स्मरण हो आने से परम सुख का आभास उस क्षण प्राप्त हुआ। स्वामीजी को प्रणाम करके दोनों व्यक्ति वहां से लौट आये। परन्तु विलक्षण योग-शक्ति का प्रभाव दोनों लोगों के मन में बैठ चुका था।

विभूतियों के बारे में भगवान पातंजलि जी ने सूत्रों में वर्णन करते हुये भिन्न-भिन्न सिद्धियों की प्राप्ति का वर्णन और उपाय बताया है। योगी जब दूसरों के चित्त पर संयम करता है तो उसे दूसरों के चित्त का साक्षात्कार प्राप्त होता है तथा संकल्प मात्र से उनके चित्त का ज्ञान प्राप्त होता है। (३।१९) पा० यो० सू०। असम्प्रज्ञात समाधि की योग्यता वाला योगी काय-निर्माण एवं चित्त-निर्माण की योग्यता रखता है। स्वामी प्रणवानन्द जी में योग की उपरोक्त शक्तियां निहित थीं।

तन्त्र-योग में मूलाधार के योनि स्थान में स्थित स्वयम् लिंग में सर्पाकार होकर लिपटी अपने मुख में सुषुम्ना के रन्ध्र को बन्द किये सो रही कुण्डलिनी शक्ति का वर्णन विशद रूप से किया गया है। ऐसे हठयोग में भी इसी आद्या शक्ति का वर्णन है। व्यक्ति में ब्रह्माण्ड

की सब शक्तियों का यह केन्द्र है। इस शक्ति की सुप्तावस्था में ब्रह्म मार्ग बन्द रहता है। सुषुम्ना रन्ध्र को ही ब्रह्ममार्ग कहते हैं। इसमें से होकर ही कुण्डलिनी सहस्रार पर पहुँचती है। गुरु-कृपा से जब सुषुप्त कुण्डलिनी जाग्रत हो जाती है, तब सब चक्रों तथा ग्रंथियों का का भेदन होता है। अर्थात् कुण्डलिनी सुषुम्ना मार्ग में स्थित सब चक्रों तथा ग्रंथियों का भेदन करती है। महाशक्ति कुण्डलिनी जाग्रत होकर सुषुम्ना मार्ग से होकर अपने निज धाम सहस्रार पर पहुँचती है। तब योगी असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त होता है। यह ज्ञान की पराकाष्ठा की अवस्था है। इस दशा में कुण्डलिनी के पहुँच जाने पर तथा निरन्तर स्थिति बने रहने पर योगी को संसार के संहार तथा रचने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। कुण्डलिनी शक्ति बिना गुरु-कृपा के सहस्रार में स्थित नहीं हो पाती है। इसी अवस्था को प्राप्त कराने के लिए श्री लाहड़ी महाशय ने स्वामी प्रणवानन्द जी पर अपनी विशेष कृपा की थी। शक्ति के निरन्तर सुषुम्ना मार्ग से प्रवाहित होने के कारण नाड़ियों में सनसनाहट इत्यादि स्थूल लक्षण भी होते हैं, जिनका वर्णन करके प्रणवानन्द जी ने पेन्शन के लिए प्रार्थना पत्र जमा किया था।

—ॐ—

मुक्तक— [श्री गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर']

साधना से

संजो-संजो सुख-स्वप्न सब, किसने किए साकार।
मृग-मरीचिका में मृग, भ्रम भूलता हर बार॥
साकार सुख-स्वप्न स्वयम्, असम्भव, सम्भव उसको।
जो साधना से सिद्ध बने, त्याग सुख-संसार॥

सत्याचरण से

सत्य के आधार, अधिक अच्छे हुआ करते हैं,
असत्य के आधार, दुख, दम्भ-भाव भरते हैं,
सत्याचरण से साधक, सिद्ध हो जाता है, और,
मिथ्यावादी अग-अपकीर्ति-भोग मरते हैं।

जन-जन त्यागें

करो न बातें एटम-बम की, यह हैं सब विनाश की मांगें,
विश्व-प्रेम हित इन सब को ही, तत्क्षण से तत्क्षण त्यागें।

सिद्धयोगी महात्मा कबीर

[श्री शिवरामसिंह सांगर, एस. आई. टी. टूण्डला]

हिन्दी साहित्य में सन्त कबीर का नाम एक सुकवि के रूप में आदर के साथ लिया जाता है। भक्त और सन्तों की गणना में भी वे उच्च कोटि के सन्त और भक्त माने जाते हैं, लेकिन वे उच्च कोटि के एक सिद्ध योगी भी थे इसे बहुत कम लोग ही जानते हैं। इस लेख में महात्मा कबीर की जीवन घटनाओं का उल्लेख 'सिद्धयोग' के पाठकों को उनके कुछ योग-ऐश्वर्यों से परिचय करा देने की दृष्टि से किया जा रहा है।

इन पंक्तियों के लेखक ने कबीर साहब के जीवन और उनके साहित्य का अध्ययन विशेष गहराई से किया है और अपने इस अध्ययन के आधार पर वह यह साधिकार कह सकता है कि सन्त कबीर निश्चय ही उच्चकोटि के सिद्धयोगी महात्मा था।

कबीर के भक्त और अनुयायियों में ऐसी मान्यता है कि कबीर का जन्म भारतवर्ष में ऐसे समय में हुआ जब धर्म का वास्तविक स्वरूप न समझकर लोग धर्म के ढोंग-ढकोसलों का अधिक आदर करने लगे थे। कबीर ने अपनी कविता के द्वारा हिन्दू और मुसलमान दोनों के ही धार्मिक ढोंग और ढकोसले पर डटकर चोट की है और उन्हें बतलाया है कि यह संसार मायामय और नाशवान है जिन्दगी पानी का सा बबूला है, न जाने चलते-चलते कब फूट जाय, इसलिए अवसर को हाथ से नहीं जाने देकर जो कुछ हो सके जल्दी-जल्दी करले नहीं तो पछताने के सिवाय और कुछ भी हाथ नहीं लगेगा। उनके ऐसे प्रबोधन के कुछ काव्यमय उदाहरण लीजिए :

काल्हि करै सो आजु करि,
आजु करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी,
बहुरि करैगा कब्ब॥
पानी का सा बुलबुला,
अस मानुष की जात।
देखत ही मिट जायगा,
ज्यों तारा परभात॥
कबिरा नौबत आपनी,
दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली,
बहुरि न देखौ आय॥

या दुनिया में आय कै,
छाड़ि देय तू ऐंठ।
लेना है सो लेहि लै,
उठी जाति है पैंठ॥
रात गंवाई सोय कर,
दिवस गंवायो खाय।
हीरा जनम अमोल यह,
कौड़ी बदले जाय॥
पाव पलक की सुधि नहीं,
करै काल का साज।
काल अचानक मारसी,
ज्यों तीतर को बाज॥
कबिरा यह तन जात है,
सकै तो राखि बहोरि।
खाली हाथों वे गये,
जिनके लाख करोरि॥

कबीर के इस प्रकार के प्रबोधन भारतीय दर्शन और शास्त्रों के सार से ही ओत-प्रोत हैं जो साखी पद दोहा सोरठा रेखता आदि छन्दों में लिखे गये। इन सबके पारायण से यह निश्चय ही पता चलता है कि यह सूक्ष्म दर्शी कवि थे और साथ ही ऊंची से ऊंची आध्यात्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत सन्त और भक्त थे। ऐसे भक्त और सन्त जिनका उद्देश्य केवल लोक कल्याण था। उनके कूट पदों और साखियों का अर्थ समझने में बड़े-बड़े ज्ञानी भी चकराते रहे हैं। जैसे—

पानी में मीन प्यासी,
मोहि देखत आवै हांसी।

इनके अनुयायियों की यह भी मान्यता है कि कबीर अवतारी पुरुष थे और अवतार लेकर ही भूले-भटके मनुष्य समाज के कल्याण के लिये यहां आये। इनके जन्म की कथा भी कुछ ऐसी ही धारणा की पुष्टि करती है। इनके माता-पिता कौन थे कहां पैदा हुए यह आज तक पता नहीं चल सका। केवल यह पता चलता है कि काशी के लहर तारा तालाब के किनारे पर वे अबोध शिशु की अवस्था में विक्रमी संवत १४५५ में (जेठ सुदी पूर्णिमा) सोमवार के दिन उस ओर से गुजरने वाले नीरू और नीमा नामक एक जुलाहा दम्पति को एक कमल पुष्प पर लेटे हुए मिले थे। कौन इस शिशु को उस अवस्था में यहां छोड़ गया था यह रहस्य आज भी खोज का विषय है। (हिन्दी के सुविख्यात मासिक कल्याण में एक अमुद्रित ग्रन्थ का हवाला देते हुए इनके जन्म के बारे में लिखा है कि एक महर्षि योगी के औरस और प्रतीची नामक देवाङ्गना के गर्भ से भक्त वर प्रहलाद ही कबीर के रूप में अवतरित हुए थे। प्रतीची ने इन्हें कमल पत्र पर रख कर लहर तारा तालाब पर तैरा दिया था जहां से नीरू-नीमा दम्पत्ति ने उठा लिया और घर ले जाकर इनका पुत्र वत् लालन-पालन किया था) आजकल लहर-तारा तालाब पर जहां कबीर

शिशु रूप में पाये गये थे उनका एक भव्य स्मारक लाखों रुपया व्यय करके बनवा दिया गया है।

एक ग्रन्थ में यह भी पढ़ने में आया है कि नूरा गौना कराने के लिए अपनी ससुराल गया था। वहाँ स्वप्न में उसे एक आध्यात्मिक सद्गुरु के दर्शन हुए। सद्गुरु ने कहा कि जब तुम घर वापिस जाओ तो काशी के लहर-तारा तालाब के पास होकर जाना। वहां कमल पत्र पर लेटा हुआ एक सुन्दर सा शिशु तुम्हें मिलेगा तुम उसे उठाकर घर ले जाना और पुत्रवत् उसका पालन-पोषण करना तथा उसका नाम कबीर रखना। स्वप्न में सद्गुरु का यह भी संकेत था कि यह बालक साक्षात् ईश्वर (खुदा) का अवतार है तुम इसी दृष्टि से इसका आदर करना। कुछ ऐसी भी किम्व-दन्तियां हैं कि यह बालक इस प्रकार किसी विधवा या सधवा के द्वारा छोड़ दिया गया था। जो कुछ भी हो इतना निश्चित् है कि इनके जन्म का रहस्य बहुत कुछ खोजबीन के बाद आज भी एक रहस्य बना हुआ है। नीरू और नीमा ने इन्हें पाला पोषा यह निर्विवाद है।

कबीर की अवस्था ज्यों-ज्यों बढ़ती गई उनमें उच्चतर ईश्वरीय गुणों का विकास भी होता गया। वे हिन्दू और मुसलमान सभी को अपना समझते थे। किसी मजहब और सम्प्र-दाय विशेष से उन्हें द्वेष न था। वे सभी को एक करना चाहते थे और सभी को खुदापरस्त ईश्वर भक्त तथा सच्चा इन्सान बनाना चाहते थे। यही कारण है कि हिन्दू और मुसलमान दोनों उनका आदर करते थे। मुसलमान उन्हें अपना पीर और हिन्दू उन्हें अपना गुरु मानते थे। सच्ची और खरी बात वे बिना किसी हिचक और डरके कहने के आदी थे। अगर मुसलमानों की कोई बुराई देखी तो उन पर भी चोट करती और हिन्दुओं में दुर्गुण देखे तो उनकी भी भर्त्सना कर आती। यही कारण था कि हिन्दू और मुसलमानों में हजारों की संख्या में जहां उनके प्रशंसक थे वहां कुछ लोग उनसे द्वेष भी रखते थे। पर कबीर ने इस प्रकार के विरोध या द्वेष की कभी परवाह नहीं की।

कबीर उस समय के प्रसिद्ध सन्त स्वामी रामानन्द जी के शिष्य थे। लेकिन शिष्य होते हुए भी अपने गुरु को कई अवसरों पर प्रबोध देकर उनको उनके सीमित जाति पांति के विचारों से उठाकर विशाल और उदात्त विचारों की ओर मोड़ा। यह कबीर के प्रयासों का ही फल था कि रामानन्द जी ने आगे चल-कर रामदास चमार, गणिकावेश्या, धन्ना जाट आदि सभी को बिना उनके वर्ण और जाति-पांति के भेद के दीक्षा देकर अपना शिष्य बनाया।

ऊपर हमने कबीर के जन्म दिवस और जन्म तिथि का परिचय दिया है। विक्रमी संवत् १४५५ जेठ शुक्ला १५ (पूर्णमासी)

सोमवार को उन्होंने अवतार धारण किया और विक्रमी संवत १५७२ में लगभग ११८ या ११६ साल की आयु के पश्चात् अपनी जीवन लीला संवरण कर ली। उनके जन्म के रहस्य का पता न चलने के कारण उन्हें अजन्मा भी कहा जाता है। स्वयं कबीर ने अपने एक पद में अपने जन्म और अपनी जाति को एक रहस्य ही बताया है। यथा—

अब हम औगत से चल आये।
इस माया ने जग भरमाया,
मेरा भेद न पावे।
ना मेरे जन्म न गर्भ बसेरा,
बालक होय दिखलाये॥
काशी पुरी में जंगल डेरा,
तहां जुलाहे ने पावे।
ना मेरे गगन धरन पन,
नाहीं मैं हूं ज्ञान उपारा॥
आत्म रूप प्रगट निज,
जग में सोई नाम हमारा।
ना मेरे अस्थि रक्त नहीं,
चर्म हम तो शब्द प्रकाशी॥
देह अपार पार परषोत्तम,
कह कबीर अबनाशी।

कबीर के जीवन के विश्लेषण और उनके रचे पदों, साखियों और वाणियों के पारायण से यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे अधिक पढ़े लिखे तो नहीं थे किन्तु अत्यधिक ज्ञानी, आत्मदर्शी और अनुभवी थे। तत्कालीन संत नाभा जी और गुरुनानकदेव उन्हें बड़ी आदर की दृष्टि से देखते थे। नाभाजी ने अपने एक पद में लिखा है।

वाणी अरबों खरब हैं,
ग्रन्थ हैं कोटि हजार।
करता पुरुष कबीर हैं,
नाभा कियो उपचार॥
चतुर भक्त गोविन्द,
दर्शन उभय तारन तरन।
तामें मुख्य कबीर हैं,
ता पद की नाभा शरण॥

कबीर की पूरी वाणी सिक्खों के गुरु ग्रन्थ साहब में है जिसे सिक्ख सम्प्रदाय में बड़े आदर के साथ पढ़ा सुना जाता है। नानक देवजी ने कबीर के बारे में एक जगह लिखा है :—

सारी उमर तप कियो कासी।
अन्त भये मगहर के बासी॥
काशी मगहर एक समान।
मुये कबीरा रमते राम॥

गुरु नानक देव कबीर को प्रायः ' रमते राम ' ही कहा करते थे। उन्होंने एक बार सम्राट बाबर से पूछने पर कहा था कि कबीर जाम्माये पाक बूद, कबीर जाते खुदा बूद, अर्थात् कबीर खुदा है। बाबर की लिखी ' तुजके बाबरी ' में

इसका कुछ जिक्र आता है। यथा—

राजपूताने के राजन साहब अम्बर के राज्याओं के काबिले ताजीम मुरशद थे। इन्होंने भी कबीर के बारे में आदर के साथ लिखा है।

काशी तज मगहर गये,
कबीर भरोसे राम।
सन्देही साहब मिले,
दादू पूरे काम॥

गोस्वामी तुलसीदास भी कबीर के प्रशंसकों में थे। उस समय की एक जन श्रुति है—

सार वस्तु सब कबिरा कहा,
शेष रहा सो सूरे कहा।
फुटकर सब कवियन कहा,
तुलसी राम नाम पद कहा।

बालक अवस्था में नीरू और नीमा इनके जिस प्रकार संरक्षक और पालन-पोषण करने वाले थे उसी प्रकार इनकी जीवन संगिनी लोई की कथा भी रहस्य पूर्ण है। माता लोई इनकी जीवन संगिनी जरूर थी किन्तु वह इनकी विवाहिता स्त्री नहीं थी। जीवन भर पति और पत्नी जैसा इनका शारीरिक सम्बन्ध नहीं रहा। कबीर का पुत्र कमाल भी लोई के पेट से पैदा नहीं था अपितु वह इनका धर्म पुत्र था। इसी प्रकार कमाली इनकी धर्म की पुत्री थी, वह भी माता लोई के गर्भ से पैदा नहीं हुई थी। लोई कबीर की सेवा अपने आराध्यदेव के समान करती थी और सदैव उन्हें आदर और श्रद्धा के साथ देखती थी। कबीर का यही छोटा सा परिवार था जिससे वे विशेष लगाव नहीं रखते थे। आत्म चिन्तन लोक कल्याण और धर्म के नाम पर फैलायी गई भ्रान्त धारणाओं के खण्डन में ही वे अपना अधिकतर समय देते थे।

सन्त कबीर के समान माता लोई के जन्म की कथा भी रहस्यमय है आज तक शोधकर्ताओं को यह पता ही न चला कि वह किस जाति वंश की थी और किन माता-पिता की सन्तान थी। कहा यह जाता है कि उस जमाने में बनारस के समीप गंगा-तट पर बनखण्डी नाम के एक महात्मा रहा करते थे। वे नित्य गंगा स्नान किया करते थे। एक दिन स्नान करते हुए उन्होंने देखा कि गंगा के प्रवाह में एक काली लोई जैसी वस्तु बहती चली जा रही है। उन्होंने उसे उठा लिया कौतूहलवश देखा तो उसमें एक छोटी सी लड़की बैठी मिली। बनखण्डी महाराज उसे अपनी कुटिया पर ले आये और उसका लालन-पालन करने लगे। चूंकि वह लोई में रक्खी हुई मिली थी इसलिए बनखण्डी महाराज ने इसका नाम लोई ही रख दिया और लोई के नाम से ही वह प्रसिद्ध हो गई। कालान्तर में लोई वयस्क और विवाह योग्य हो गई साथ ही बनखण्डी महाराज की अवस्था भी अधिक हो गई। वे जब चोला छोड़ने को हुए तो अवसर पाकर लोई ने उनसे पूछा—महाराज मेरे लिए क्या आज्ञा है? बनखण्डी महाराज ने कहा

बेटी तुम सदा साधु सेवा करती रहना। एक दिन एक महान तपस्वी संत आयेंगे तू उनके साथ चली जाना। लोई ने पूछा महाराज मुझे इन संत का पता कैसे चलेगा। महात्मा बनखण्डी बोले यह सब पता तुझे अपने आप चल जायगा। बनखण्डी महाराज समयान्तर में इस संसार से विदा हो गये। लोई उसी कुटिया में रहकर आगत सन्तों की आवभगत करने लगी। कबीर एक दिन कड़ी गर्मी धूप से कुछ बचाव और विश्राम करने की इच्छा से उस कुटी की ओर आ निकले। वहां ६ महात्मा और भी बैठे हुए थे। लोई ने सात प्यालों में उनके पीने के लिए दूध लाकर रख दिया। कबीर को छोड़कर बाकी ६ महात्माओं ने अपना-अपना दूध पी लिया। लोई ने कबीर से पूछा स्वामी आपने दूध क्यों नहीं पिया। कबीर साहब बोले, एक महात्मा अभी और आ रहे हैं, यह दूध उनके लिए है। वे इसे पीयेंगे। लोई ने कहा–स्वामी दूध और भी रक्खा है। महात्मा जी के आने पर उन्हें पिला दिया जायगा। इसी बीच में गंगा पार करके एक साधु महात्मा और आ गये। लोई हैरान हुई कि कबीर साहब को इन महात्मा के आने का आभास पहले से ही कैसे हो गया।

उसने कबीर की ओर देखकर पूछा आप कौन हैं आपका शुभ नाम क्या है। उन्होंने कहा मैं कबीर हूं। कबीर ही मेरा नाम है। आपकी जाति क्या है। उत्तर मिला कबीर। लोई ने आगे पूछा आपका भेष क्या है। महात्मा ने कहा कबीर। लोई अपने सब प्रश्नों का एक ही उत्तर कबीर सुनकर और भी हैरानी में पड़ गई। अपना नाम कबीर बताने वाले महात्मा का ओज तेज पूर्ण मुख मण्डल मणि के समान जगमगा रहा था। उसके चित्त में उनके प्रतिआकर्षण के अंकुर उगने लगे। उसे यह समझने में देर नहीं लगी कि यही वह महात्मा हैं जिनके साथ जाने का संकेत महाराज बनखण्डी ने इस संसार से विदा होते समय मुझे दिया था। लोई ने वहीं से महात्मा कबीर का साथ पकड़ लिया। इस समय उसकी उमर लगभग २० वर्ष के थी और कबीर साहब की अवस्था इस समय थी ३० वर्ष। दोनों जब घर पहुँचे तो कबीर की मां नेमा को बेहद खुशी हुई। वह कहने लगी लड़का खुद ही मन पसन्द बहू ले आया 'यह अच्छा ही हुआ।' मगर कुछ समय बाद इस भेद का पता चला कि कबीर और लोई के बीच में पति-पत्नी जैसा कोई सम्बन्ध ही नहीं है। पवित्र प्रेम का सम्बन्ध ही दोनों के बीच में था यद्यपि लोई उन्हें स्वामी कहकर ही संबोधित करती थी। कबीर की जीवनी खोजने वालों को जिस-प्रकार कबीर के मां-बाप का पता नहीं चला वैसे ही लोई के माता पिता का पता लगाने में भी वे सफल न हो सके। कहते हैं कबीर तेजोमय शरीर लेकर आये थे। किसी गर्भ से उनकी उत्पत्ति नहीं हुई। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वे योग-निर्मित देह लेकर आये थे। सिद्ध योगियों को यह सामर्थ्य होता है।

कबीर का युग हिन्दुस्तान में मुस्लिम शासकों

का युग था बहुधा मुसलमान अपनी अनुदार और संकुचित विचार धारा के कारण हिन्दु मतावलम्बियों पर विविध प्रकार जोर-जुल्म किया करते थे। कबीर साहब प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से मुसलमानों के ऐसे अमानवीय व्यवहार का विरोध करके हिन्दुओं की रक्षा करते रहे। इसके लिए उस समय के सुल्तान सिकन्दर लोधी और उसके पीर शेख तकी को अपने व्यक्तित्व से प्रभावित करके हिन्दुओं की भावनाओं और मान्यताओं की रक्षा कराई। समय के प्रवाह को देखते हुए यह बहुत बड़ा काम था जो कबीर ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए किया। सुल्तान सिकन्दर लोधी कबीर का बहुत आदर करता था इसका कारण कबीर का योगेश्वर्य ही बताया जाता है। कहते हैं कि कबीर ने जब हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाये जाते हुए देखा तब उन्होंने यही निश्चय कि यदि सुल्तान लोधी को अपने प्रभाव में ले आया जाय तो यह सब कुछ आसानी से रोका जा सकता है। काशी में बैठे-बैठे ही उन्होंने संकल्प किया कि सुल्तान दाह-रोग से पीड़ित हो जाय। फल स्वरूप सुल्तान दाह रोग से पीड़ित हो गया। हकीम और वैद्यों से अनेक इलाज कराये लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ उल्टा रोग दिन व दिन बढ़ता ही चला गया। सुल्तान के इस बढ़ते हुए रोग की चर्चा चारों ओर फैल गई। दूर-दूर से लोग उसे देखने और उससे मिलने आने लगे। एक वयो-वृद्ध अनुभवी व्यक्ति ने सुल्तान की बढ़ती हुई बेचैनी देखकर कहा—जहाँ पनाह! आपका यह रोग दवाइयों से जाने वाला नहीं मालूम होता। इसके हटाने के लिए आपको किसी माने हुए सन्त की सेवा में जाना होगा। इसी व्यक्ति ने आगे बताया कि काशी में इस समय दो ऐसे व्यक्ति हैं जो आपके इस दाह-रोग को आसानी से ठीक कर सकते हैं। इनमें एक का नाम है स्वामी रामानन्द और दूसरे का नाम है कबीर साहब। बादशाह लोधी ने इस परा-मर्श को मान लिया। समय निकाल कर वह अपने पीर शेख तकी और कुछ अंगरक्षकों के साथ काशी पुरी को चल दिया। वहाँ पहुँच कर उसने राज भवन में डेरा डाला। वहाँ से अपने पीर तकी और कुछ मुसाहिबों के साथ वह पैदल ही चलकर स्वामी रामानन्द के निवास-स्थान पर पहुँचा। रामानन्द अपनी कुटिया में ध्यान मग्न थे।

सिकन्दर लोधी ने बड़ी इज्जत से स्वामीजी को आवाज दी और प्रार्थना की मैं हिन्दुस्तान का सम्राट सिकन्दर लोधी हूँ। कृपया आप मुझे दर्शन दें। स्वामी रामानन्द जी ने दर्शन देने से मना कर दिया क्योंकि स्वामी जी का ये उसूल था कि वे किसी यवन के मुँह नहीं लगते थे। उन्होंने साफ-साफ कह दिया मैं तुम्हें दर्शन नहीं दे सकूँगा। तुम यहाँ से चले जाओ। बादशाह ने साथियों से कहा—कि चलो—मेरी मौत तो आनी ही है। अगर ये संत दर्शन देना नहीं चाहते तो मैं भी बल पूर्वक दर्शन नहीं करना चाहता। सिकन्दर लोधी ने

फिर पूछा कि दूसरे महात्मा कबीर साहब कहाँ है। विचार आते ही सुल्तान ने देखा कि कबीर साहब उनके सामने खड़े है। गुरु ने बताया कि कबीर साहब यही है। बादशाह ने भूमि पर लेटकर कबीर साहब को दण्डवत् किया और कबीर ने सुल्तान को अपने कर कमलों से उठाकर छाती से लगा लिया। कबीर साहब के अंग से स्पर्श होते ही सुल्तान का दाह रोग समाप्त हो गया और बादशाह को कोई तकलीफ बाकी नही रही। वह बिल्कुल तन्दुरुस्त हो गया और कहने लगा कबीर साहब आप तो मेरे लिये खुदा है। है। कबीर ने कहा आओ हम आपको अपने गुरु महाराज रामानन्द जी के भी दर्शन करा दें। बादशाह ने कहा मुझे अब किसी के दर्शन नही करने। मेरे लिए आप ही काफी है क्यूँकि मेरी प्रार्थना पर उन्होंने मुझे पहले दर्शन नही दिये कबीर ने इस पर कथन किया कि नहीं आप हमारे साथ चलें हम आपको उनका दर्शन अवश्य करा देंगे। सुल्तान कबीर के साथ चलने को राजी हो गया। स्वामी रामानन्द की कुटी पर पहुँचकर एकान्त में कबीर ने श्री रामानन्द को समझाया कि सुल्तान भक्त जरूर है लेकिन उसके मांस-मदिरा सेवन का दोष उसी को लगेगा आपको उसे दर्शन देने से कोई पातक नहीं लगेगा। बात रामानन्द की समझ में आ गई और वे सुल्तान को दर्शन देने के लिए कुटिया से बाहर निकल आये। उनके बाहर आते ही सुल्तान ने उन्हें लेटकर प्रणाम किया। स्वामी जी ने अपना हाथ उठाकर उसे शुभाशीर्वाद दिया। सुल्तान ने उनसे और कबीर साहब दोनों से आग्रह किया कि उसकी राजधानी में चलकर उसके राजमहलों को पवित्र करें और वहां कुछ दिन निवास करें। स्वामी रामानन्द ने काशी छोड़कर वहां जाने में अपनी असमर्थता प्रकट की और कबीर से कहा कि आप ही उधर चले जावें। कबीर साहब सुल्तान के साथ राजधानी दिल्ली जाने को राजी हो गये।

बादशाह के आदेश से एक सुसज्जित हाथी मंगवाया गया जिस पर कबीर साहब को आगे बिठलाया गया और बादशाह पीछे बैठकर उनके ऊपर चँवर डुलाने लगे। इसी प्रकार सुल्तान और कबीर साहब दिल्ली जा पहुँचे। बादशाह ने कबीर को राज दरबार में एक रत्न जटित सिंहासन पर बिठाकर उनकी बड़ी आव-भगत की। नित्य ही दरबार में कबीर साहब का सत्संग चलता रहा। कबीर सिंहासन पर बैठते थे और बादशाह एवं दरबारी नीचे फर्शपर बैठकर उनकी वाणी सुनते थे। अपना दाह रोग मिटा देने के कारण सुल्तान लोधी कबीर को साक्षात् खुदा समझता था और खुदा जैसी ही उन्हें इज्जत देता था। लेकिन बादशाह के पीर तकी को कबीर को दिया जाने वाला यह राज-सम्मान अच्छा नहीं लगता था वह मन ही मन कबीर से कुढ़ता था और कहा करता था कि बादशाह का

पीर तो मैं हूँ यह दूसरा पीर कहां से पैदा हो गया। द्वेष वश उसने कबीर के विरुद्ध सुल्तान के कान भरने शुरू किये। एक दिन खुलकर उसने बादशाह से कहा कबीर अपने को खुदा कहा करता है। और मुसलमान मजहब की बेइज्जती करता रहता है। उससे कहिए कि अगर वह खुदा है तो खुदा जैसा कोई करिश्मा करके दिखावे। सुल्तान ने कहा पीर साहब आपको मालूम है कि मुझे बेहद दाह-रोग हो गया था। बहुत इलाज कराने पर भी वह ठीक नहीं हुआ। तुम भी उसे दूर नहीं कर सके लेकिन कबीर साहब ने उसे मुझे छूकर ही दूर कर दिया इसलिए मैं तो उसे खुदा ही समझता हूँ। फिर भी तुम्हारा प्रश्न मैं कल दरबार में कबीर साहब के सामने रक्खूंगा देखें वे क्या जवाब देते हैं।

दूसरे दिन जब कबीर साहब सिंहासन पर आकर बैठे तो बादशाह की ओर देखकर मुस्कराने लगे। बादशाह ने समझ लिया कि कबीर ने सब कुछ जान लिया है। फिर भी बादशाह ने उनसे कहा महाराज आप अपने आपको खुदा कहते हैं और मुसलमान मजहब की निंदा करते हो। क्या यह बात सही है।

कबीर साहब ने जवाब दिया कि मैं खुदा हूँ इसमें रत्ती भर भी झूठ नहीं। और मुसलमानी मजहब की निन्दा करता हूँ यह भी सही है। जो मुसलमान खुदा के नाम पर बकरे काट कर चढ़ाते हैं और जो देवी देवताओं के नाम पर बे जबान जानवरों की बलि चढ़ाते हैं वे निन्दा के योग्य ही हैं मैं उनकी निन्दा करता हूँ और ऐसे सभी लोगों को समझाता हूँ कि जो बे गुनाह जानवरों को अपनी जीभ के स्वाद के लिए काटकर खाते हैं वे जानवर अगले जन्म में उन्हें उसी तरह काटकर अपना बदला जरूर लेंगे। बादशाह की समझ में यह बात आ गई कि कबीर किसी का पक्षपाती नहीं है वह हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक नजर से देखता है। उसने कबीर साहब से कहा—अच्छा यह तो ठीक है मगर आप अपने को खुदा क्यों कहते हैं इसे भी तो समझाइए। कबीर ने कहा इसकी भी परीक्षा आप जैसे चाहें लेवें।

सुल्तान ने युक्ति निकाली। एक गाय उसके हुक्म से मंगायी गई और उसके हुक्म से ही उसे भरी सभा में कत्ल करा दिया गया। फिर सुल्तान ने कबीर साहब से कहा अगर आप खुदा हैं तो इस मुर्दा गाय को जिन्दा करदें।

सब हैरान थे कि मुर्दा गाय कैसे जीवित होगी। कबीर सिंहासन से उठे और मरी हुई गाय के पास आकर खड़े हुए और अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाकर बोले गऊ माता कबीर के नाम पर जिन्दा हो जा। गाय तत्क्षण इस प्रकार उठकर बैठ गई जैसे कि वह सोकर उठी हो। उसके कटे अङ्ग भी नामालूम ढंग से जुड़ गये। सभी दर्शक आश्चर्य चकित रह गये और कबीर साहब की जय के नारे लगाने लगे।

बादशाह की श्रद्धा कबीर के प्रति और अधिक बढ़ गई लेकिन शेख तकी और अधिक ईर्षालु हो गया। उसने कबीर का अस्तित्व ही मिटा देने का इरादा किया। और इसके लिए नये-नये उपाय सोचने लगा।

एक दिन शेख तकी ने काजी और मुल्लाओं की एक गुप्त मीटिंग बुलाई जिसमें कबीर को किसी न किसी तरकीब से मार डालने का निश्चय किया गया। इस मीटिंग में यह तरकीब भी सोची गई कि कबीर साहब को राज भवन के आंगन में बिठला कर एक खूनी हाथी को उन पर छोड़ दिया जाय। वह उन्हें अपने पैरों से रौंद कर मार डालेगा। बादशाह से कहा जाय कि अगर वह खुदा होगा तो खूनी हाथी उसका कुछ न बिगाड़ सकेगा नहीं तो वह मर ही जायगा।

काजी और मुल्लाओं के समर्थन से तय हुई यह योजना सुल्तान के कानों तक पहुंची और सुल्तान ने इस पर अपनी मंजूरी की मुहर लगा दी। कबीर को भी इस इरादे की सूचना दी गई। दूसरे हो दिन उनसे प्रार्थना की गई कि वे राज-महल के आंगन के मध्य में बैठ जायें। कबीर साहब निर्देशित स्थान पर निर्धारित समय पर बैठ गये जो सैकड़ों की संख्या में दरबारी और मुसाहिब लोग महल के भी आंगन के आस पास वाली छतों पर तमाशा देखने के लिए आ बैठे। सुल्तान और शेख तकी व उसके अनेक साथी इस दर्दनाक तमाशे को देखने वालों में शामिल थे। निश्चित समय पर एक खूनी हाथी शराब पिलाकर आंगन में लाकर छोड़ दिया गया। हाथी बुरी तरह चिंघाड़ने लगा। महल पर खड़े होकर तमाशा देखने वाले सभी लोग उस चिंघाड़ से कांपने लगे। उन्होंने देखा हाथी चिंघाड़ तो रहा है लेकिन उसे कबीर साहब की ओर बढ़ने की हिम्मत नहीं हो रही है वह जहां खड़ा था वहीं खड़ा होकर कांपने लगा। मानो वह बहुत ही भयभीत हो गया हो। थोड़ी ही देर में वह पीछे मुड़ा और मुड़कर वह उसी दरवाजे की ओर भाग गया जिसमें होकर वह आया था। कबीर साहब यथा स्थान ज्यों का त्यों बैठे रहे। उनका बाल भी बांका नहीं हुआ। सुल्तान लोधी तो इस दृश्य को देखकर खुश था लेकिन शेख तकी और उसके कुछ कुटिल साथी जिन्होंने कबीर को हाथी के पैरों से कुचलवा कर मार डालने की योजना बनाई थी शर्मिन्दगी से मुंह नीचा करके खड़े थे। इसी बीच में सुल्तान कबीर के पास आये और प्रणाम करके पूछा स्वामीजी यह बताइए कि खूनी हाथी चिंघाड़कर आपको देखते ही भाग क्यों गया। कबीर साहब ने कहा बादशाह मैंने अपनी योग की सिद्ध शक्ति के बल से दाईं बगल से एक शेरबबर और बाईं बगल से दूसरा शेरबबर निकालकर दो शेरबबरों को खड़ाकर दिया था हाथी शेरों से डरता है इसलिए वह उन्हें देखकर भाग गया।

बादशाह लोधी ने कबीर की इस शक्ति के आगे पुनः अपना सिर झुकाया और इस प्रकार के पराक्रम से जो कष्ट और असुविधा उन्हें हुई उसके लिए क्षमा मांगी।

इस प्रकार कबीर साहब की योग शक्ति का परिचय पाकर बादशाह की और अधिक श्रद्धा उनके प्रति बढ़ गई। वह उनका और भी अधिक आदर करने लगा। —सम्पूर्ण

प्राणायाम का महत्व

एक स्वस्थ मनुष्य स्वाभाविक रीति से एक मिनट में पंद्रह बार श्वास लेता है। साधारण स्थिति में श्वास की गति इस क्रम से होती है। (१) श्वास का भीतर जाना, (२) भीतर रुकना, (३) बाहर निकलना, (४) बाहर रुकना। श्वास के भीतर आने को श्वास, बाहर निकलने को प्रश्वास और अंदर तथा बाहर रुकने को विराम कहते हैं। इस स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास की गति के वशीकरण से शरीर के भीतर प्राण की समस्त सूक्ष्म गतियों का वशीकार हो सकता है और नाना प्रकार की अद्भुत शक्तियां प्राप्त हो सकती हैं। इन दोनों गतियों के नियम पूर्वक रोक देने के अभ्यास से आयु बढ़ती है, शरीर स्वस्थ रहता है—कुण्डलिनी जाग्रत् होती है और मन जो अति चञ्चल तथा दुर्निग्रह है, प्राण से सम्बन्ध रखने के कारण उसके रुकने से शीघ्र स्थिर हो जाता है। योग का अन्तिम लक्ष्य चित्त की वृत्तियों का रोकना है, इसलिये सूत्रकारने प्राणायाम को योग का चौथा अङ्ग मानकर उसका लक्षण (नियम पूर्वक) श्वास-प्रश्वास की गति का रोकना किया है। तीन नियमित क्रियाओं से इस गति का निरोध किया जाता है। इसलिए प्राणायाम के तीन भेद पूरक=आभ्यन्तर वृत्ति, रेचक=बाह्य-वृत्ति और कुम्भक स्तम्भ-वृत्ति किये हैं।

—श्री स्वामी ओमानन्द तीर्थ

Regd. No. L. A. [illegible]

योग के सिद्धान्त और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्ध योग

संस्थापक संपादक तथा संरक्षक:
योगिराज अनंत श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

संकल्पमयोऽयं पुरुषः

उपनिषदों में बतलाया गया है यह पुरुष संकल्प ही का बना हुआ है। मनु [illegible] का भी कथन है।

व्रत नियम धर्मादिच सर्वे संकल्पजा : स्मृता :

अर्थात् [illegible]

[illegible]

वेद में भी अनेक मन्त्र [illegible] आते हैं जिनमें [illegible]

तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु

अर्थात् मेरा मन पवित्र संकल्प वाला हो। [illegible]

मुद्रक — [illegible]